समस्याओं का समाधान हथियारों के बल पर नहीं, बल्कि बंधुत्व की भावना से किया जा सकता है। -अटल बिहारी वाजपेयी

ब्रिक्स का यूरोपीय संघ के कार्बन बॉर्डर टैक्स के प्रस्ताव को अस्वीकारना वैश्विक व्यापार व जलवायु नीतियों के संदर्भ में यूरोपीय और विकासशील देशों के बीच गहराते टकराव को ही दर्शाता है। पश्चिमी देशों के लिए ऐसे कठोर संदेश तब और जरूरी हो जाते हैं, जब उन्होंने इस मामले में दशकों से गैर-जिम्मेदाराना रवैया अपनाया हुआ हो।

ईयू को संदेश

ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका समेत कुल ग्यारह देशों के समूह ब्रिक्स का यूरोपीय संघ (ईयू) के कार्बन बॉर्डर टैक्स प्रस्ताव को अस्वीकार करना वैश्विक व्यापार और जलवायु नीतियों के संदर्भ में वैश्विक दक्षिण की आकांक्षाओं की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति तो है ही, यह इस मुद्दे पर यूरोपीय और विकासशील देशों के बीच गहराते टकराव को भी दर्शाता है। उल्लेखनीय है कि कार्बन बॉर्डर समायोजन तंत्र (सीबीएएम), जिसे 2026 से लागू करने की योजना है, कार्बनयुक्त उत्पादों, मसलन, लोहा, इस्पात, एल्युमीनियम और सीमेंट के यूरोपीय संघ के 27 देशों में आयात पर शुल्क लगाने का प्रावधान करता है। ईयू का दावा है कि यह नीति कार्बन के रिसाव को रोकने और जलवायु लक्ष्यों को पाने के लिए जरूरी है। इससे विकासशील देशों और इन उत्पादों के भारत और चीन जैसे बड़े निर्यातकों को भारी शुल्क का सामना करना पड़ेगा। इससे इन देशों से ईयू में निर्यात होने वाले स्टील, एल्युमीनियम जैसे आइटम काफी महंगे हो जाएंगे, जिससे इनका निर्यात प्रभावित होगा। ब्रिक्स का यह भी मानना है कि यूरोपीय संघ का यह प्रस्ताव विश्व व्यापार संगठन के नियमों और पेरिस समझौते का भी उल्लंघन है। खास बात यह है कि इस एक मुद्दे पर भारत और चीन एक ही मंच पर खड़े दिख रहे हैं, जो अपने आप में एक दुर्लभ घटना है। ब्रिक्स का यह विरोध जलवायु नीतियों में निहित असमानता को रेखांकित करता है। ऐतिहासिक रूप से, विकसित देशों ने औद्योगीकरण के दौरान भारी कार्बन उत्सर्जन कर अपना विकास तो किया, लेकिन इसका खामियाजा आज पूरा विश्व भुगत रहा है। कार्बन बॉर्डर टैक्स जैसे उपाय विकासशील देशों पर अनुचित बोझ डालते हैं, जो पहले से ही जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों, मसलन-बाढ़, सूखा और दूसरी चरम मौसमी घटनाओं से जूझ रहे हैं। भारत, जो 2070 तक शुद्ध-शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य रखता है, ने लगातार मांग की है और ईयू के साथ चल रही मुक्त व्यापार समझौता (एफटीए) वार्ता में भी इस मुद्दे को प्राथमिकता के साथ उठाया है कि विकसित देश इस मामले में जिम्मेदार रवैया अपनाएं। यूरोपीय संघ का कार्बन बॉर्डर टैक्स प्रस्ताव दरअसल एक किस्म का हरित संरक्षणवाद ही है, जो पर्यावरण संरक्षण के नाम पर व्यापार बाधाएं खड़ी करता है। पश्चिम का यह रवैया वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं को तो प्रभावित करता ही है, विकासशील देशों की हरित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ने की क्षमता को भी सीमित करता है। ब्रिक्स देशों का रुख उनके आर्थिक हितों की रक्षा करने के साथ जलवायु के क्षेत्र में न्याय और समानता का मजबूत संदेश भी देता है। पश्चिमी देशों को समय-समय पर ऐसे कठोर संदेश मिलने तब और जरूरी हो जाते हैं, जब वे वर्षों से अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी को स्वीकारने के मामले में ढीठ बने हुए हैं।

इस प्यार को क्या नाम दें

विधानसभा चुनाव में मिली करारी हार के बाद किसी तरह अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए ठाकरे बंधुओं की सारी कसरत इस साल के अंत में होने वाले बीएमसी चुनाव को लेकर है, जो करीब साढ़े चौहत्तर हजार करोड़ रुपये के परिव्यय वाला देश का सबसे बड़ा नगरीय निकाय है।

शेखर अय्यर
वरिष्ठ पत्रकार

शिवसेना (यूबीटी) प्रमुख उद्धव ठाकरे और मनसे प्रमुख राज ठाकरे कह रहे हैं कि वे एकजुट रहने के लिए एकसाथ आए हैं। बीस साल में पहली बार उन्होंने मराठी अस्मिता और हिंदी भाषा 'थोपे' जाने के मुद्दे पर राजनीतिक मंच साझा किया है। अगर किसी को इस बात पर संदेह हो कि अचानक ये दोनों पार्टियां क्यों हाथ मिला रही हैं, तो यह बिल्कुल स्पष्ट ही है। असल में महाराष्ट्र के पिछले विधानसभा चुनाव में इन दोनों पार्टियों को भारी नुकसान हुआ था। चुनाव में शिवसेना (यूबीटी) ने 20 सीटें जीती थीं, जबकि एकनाथ शिंदे के नेतृत्व वाली शिवसेना ने 57 सीटें जीती थीं। मनसे को एक भी सीट नहीं मिली थी।

इसलिए उनके कार्यकर्ता हताश हो रहे थे और चाहते थे कि उनका विलय हो जाए, ताकि वे अपना भाग्य पुनः संवार सकें। यही कारण है कि राज ठाकरे ने चुटकी लेते हुए कहा कि मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस ने दोनों चचेरे भाइयों को एकसाथ लाकर वह काम कर दिया है, जो शिवसेना के संस्थापक बालासाहेब ठाकरे और अन्य नहीं कर सके। उद्धव का इरादा साफ था। मुंबई में आयोजित कार्यक्रम में उन्होंने घोषणा की, 'हम साथ रहने के लिए साथ आए हैं। हम साथ मिलकर मुंबई नगर निगम और महाराष्ट्र में सत्ता हासिल करेंगे।'

इस साल के अंत में बृहन्मुंबई महानगर पालिका (बीएमसी) और अन्य नगर निकायों के चुनाव होने वाले हैं। बीएमसी का बजट हजारों करोड़ रुपये में है। यह भारत का सबसे बड़ा नगरीय निकाय है। बीएमसी ने चार फरवरी, 2025 को वित्तीय वर्ष 2025-26 के लिए अपना बजट पेश किया, जिसका कुल परिव्यय 74,427.41 करोड़ रुपये है। यह पिछले बजटों की तुलना में 14 फीसदी अधिक है, जिसमें कई बुनियादी ढांचा परियोजनाएं शामिल हैं। इसलिए, पिछले साल के विधानसभा चुनाव के बाद बीएमसी दो राजनीतिक गठबंधनों (महायुति और महा विकास अघाड़ी) के लिए अगला युद्ध क्षेत्र है।

नगरीय निकाय की विधायिका 2022 में समाप्त हो गई और तब से इसे सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासक द्वारा चलाया जा रहा है। शिवसेना, जो 1985 से (1992-1996 को छोड़कर) नगर निकाय पर शासन कर रही है, इन चुनावों में अस्तित्व के संकट का सामना कर रही है। लोकसभा और राज्य विधानसभा चुनावों की तरह, एकनाथ शिंदे और उद्धव ठाकरे के नेतृत्व वाले शिवसेना के दो गुट मुंबई में शिवसेना के मराठी वोट आधार के लिए आमने-सामने भिड़ने वाले हैं। मुंबई में अपनी पकड़ मजबूत कर रही भाजपा एकनाथ शिंदे की अगुवाई वाली शिवसेना के साथ मिलकर बीएमसी पर कब्जा करना चाहेगी।

दूसरी ओर, कांग्रेस को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी होगी। वह राज्य में कोई बड़ी पार्टी नहीं है। विधानसभा चुनाव में उद्धव और राज की अपमानजनक हार के बाद, ये नगर निगम चुनाव उनके लिए पुनरुद्धार की कुछ उम्मीद जगाते हैं।

राज ठाकरे ने 2005 में अपने चचेरे भाई के साथ तीखे मतभेदों के चलते शिवसेना छोड़ दी थी, जिसके बाद उन्होंने मनसे का गठन किया। वह मनसे को भूमिपुत्रों के हित के सच्चे हिमायती के रूप में पेश कर रहे थे। लेकिन वह उन लोगों के साथ तालमेल नहीं बिठा पाए, जो उनकी आक्रामक शैली का समर्थन नहीं करते थे, यानी महाराष्ट्र के मराठी भाषी लोग। उन्होंने उद्धव को पसंद किया, जिन्हें एक उदारवादी नेता के रूप में देखा जाता था। तब से, शिवसेना और मनसे ने एक-दूसरे के खिलाफ चुनाव लड़ा है, हालांकि उनके कुछ शुभचिंतकों ने हाथ मिलाने की अपील भी की। इसलिए, जब फडणवीस सरकार ने त्रि-भाषा नीति पर थोड़ी ढिलाई बरती, तो उन्हें एक बड़ा अवसर दिखाई दिया।

तीसरी भाषा के रूप में हिंदी को शामिल करने से उद्धव और राज ठाकरे के लिए एक बहुत जरूरी साझा मुद्दा सामने आया। मनसे और शिवसेना (यूबीटी) के लिए असली चुनौती यह है कि मुंबई में 45 प्रतिशत से ज्यादा मतदाता गैर-मराठी भाषी हैं। वे शिवसेना की कट्टरपंथी राजनीति और उनके खिलाफ हिंसा से सावधान हैं। वे भाजपा को पसंद करते हैं, क्योंकि कांग्रेस का पतन हो रहा है। इसके अलावा, महाराष्ट्र के विदर्भ और मराठवाड़ा क्षेत्र भी हिंदी भाषी क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में हिंदी के प्रति कोई नकारात्मक भावना नहीं है, क्योंकि मराठी भाषी अन्य लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण तरीके से रहते हैं। इसलिए, अगर ये दोनों पार्टियां गैर-मराठी भाषियों के खिलाफ अपने आंदोलन को बहुत आगे ले जाती हैं, तो वे हार सकती हैं।

हम पहले ही देख सकते हैं कि यूबीटी सेना चुप रहना चाहती है। यह गैर-मराठी भाषियों के खिलाफ एमएनएस कार्यकर्ताओं द्वारा की गई हिंसा का समर्थन नहीं कर सकती। यह भी सच है कि ठाकरे बंधुओं द्वारा एकजुट मराठी मंच एकनाथ शिंदे के लिए समस्या बन सकता है। लेकिन अगर गैर-मराठी मतदाता डर गए, तो यूबीटी सेना और मनसे के लिए यह कोई बड़ी जीत का फॉर्मूला नहीं है। ठाकरे की रैली से एक दिन पहले, पुणे में केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह के सामने एकनाथ शिंदे द्वारा 'जय गुजरात' का नारा लगाए जाने को नई स्थिति के प्रति उनकी चिंता की अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया। यही कारण है कि शिवसेना (यूबीटी) ने हिंदी पर अपने रुख और तमिलनाडु में दिख रहे ज्यादा कट्टर विपक्ष के बीच एक स्पष्ट रेखा खींच दी है।

मुंबई में चचेरे ठाकरे भाइयों की 'विजय रैली' के बाद तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एमके स्टालिन की कड़ी टिप्पणियों से शिवसेना (यूबीटी) खुद को दूर कर रही है। पिछले वर्ष विधानसभा चुनाव में भाजपा ने 288 सीटों वाली विधानसभा में 132 सीटें जीती थीं। महाराष्ट्र में यह सबसे प्रभावशाली राजनीतिक पार्टी बनी हुई है। इसका वोट शेयर 26.77 फीसदी है, जो दूसरे स्थान पर रहने वाली कांग्रेस के वोट शेयर से दोगुना है, जिसका वोट शेयर 12.42 फीसदी है। फिर भी, मुंबई, ठाणे, पुणे और नासिक जैसे शहरों में मतदाताओं का थोड़ा-सा भी मानसिक बदलाव पार्टी को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। इसलिए यह किसी भी पार्टी के लिए जीत वाली स्थिति नहीं है।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

स्वामी चैतन्य कीर्ति

'गुरु' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। दुनिया की भाषा में इसके समतुल्य कोई शब्द नहीं है; क्योंकि इसके समान कोई अनुभूति जगत के किसी और हिस्से में खोजी नहीं जा सकी है।

गुरु-परताप साध की संगति!

इन थोड़े-से शब्दों में सदियों की खोज का निचोड़ है; अनंत साधकों की साधना की सुवास है; अनेक सिद्धों के खिले कमलों की आभा है। इन थोड़े-से शब्दों को जिसने समझा, उसने पूरब की अंतरात्मा को समझ लिया। पश्चिम ने विज्ञान दिया है मनुष्य को, पूरब ने धर्म दिया है। और धर्म का सार-अर्थ इन थोड़े-से शब्दों में है- गुरु-परताप साध की संगति! 'गुरु' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ शिक्षक नहीं होता, न अध्यापक, न व्याख्याता। दुनिया की किसी भी भाषा में इस शब्द को रूपांतरित करने का उपाय नहीं है। दुनिया की भाषा में इसके समतुल्य कोई शब्द नहीं है; क्योंकि इसके समान कोई अनुभूति जगत के किसी और हिस्से में खोजी नहीं जा सकी है।

'गुरु' बनता है दो शब्दों से-गु और रु। गु का अर्थ होता है अंधकार; रु का अर्थ होता है अंधकार को दूर करने वाला। गुरु का अर्थ है, जिसके अंतस का दीया जल गया है; जिसके भीतर रोशनी हो गई है; सूरज हो गया है; जिसके अंग-अंग से, द्वारों से, झरोखों से, संधों से रोशनी झर रही है। और जो भी उसके पास बैठेंगे, नहा जाएंगे उस रोशनी में; उस प्रभामंडल से वे भी आंदोलित होंगे। जो स्वर गुरु के भीतर बजा है, उसकी चोट तुम्हारे हृदय की वीणा पर भी पड़ने लगेगी। जो गुरु ने जाना है, उसे गुरु जना नहीं सकता; जो जाना है, उसे बता नहीं सकता। लेकिन उसके पास बैठे, तो बिना कहे कुछ कह दिया जाता है और बिना बताए कुछ बता दिया जाता है। उसकी मौजूदगी, उसकी उपस्थिति तुम्हें तरंगायित कर देती है। स्वभावतः, रोशनी के पास बैठोगे, अगर आंख बंद करके भी बैठे तो भी रोशनी में नहा जाओगे। संगीत चाहे सुनाई भी न पड़े, तो भी तुम्हारे रोएं-रोएं को स्पर्श करेगा। और सुगंध, चाहे तुम्हारे नासपुट सक्रिय न भी हों, तो भी तुम्हारे नासापुटों तक आएगी, तुम्हारे फेफड़ों तक पहुंचेगी। और सुगंध तुम्हारे फेफड़ों तक पहुंच जाए तो नासापुट सक्रिय हो जाएंगे। और रोशनी तुम्हारे रोएं-रोएं को नहला दे, तो आंखें खुल जाएंगी।

सुबह देखा नहीं, चादर ओढ़े बिस्तर पर पड़े हो और सूरज उगने लगा है! दरवाजे बंद हैं, परदे पड़े हैं और फिर भी परदों की संधों से रोशनी भीतर आने लगी और रोशनी तुम्हारी बंद आंखों पर पड़ने लगी, तत्क्षण कोई भीतर जग जाता है। तत्क्षण कोई भीतर कहने लगता है : सुबह हो गई, अब उठो। ठीक ऐसी ही घटना गुरु के सत्संग में घटती है। तुम सोए पड़े हो, किसी का सूरज उग आया, उसकी रोशनी तुम्हारी बंद आंखों से थोड़ा-न-बहुत प्रवेश कर जाती है। और उसकी चोट तुम्हें आंखें खोलने को मजबूर कर देगी, विवश कर देगी। आंख खोलनी ही पड़ेगी। क्योंकि अंधेरा हमारा स्वभाव नहीं है। अंधेरे में हम पड़े हैं, यह हमारी मजबूरी है।

अंधेरे में हम पड़े हैं, क्योंकि प्रकाश से हमारी अभी पहचान नहीं हुई। लेकिन प्राणों के गहनतम में प्यास तो प्रकाश की है। तमसो मा ज्योतिर्गमय! कोई भीतर पुकार ही रहा है कि ले चलो, प्रकाश की तरफ ले चलो! अंधकार नहीं, आलोक। क्योंकि अंधकार अंधकार ही नहीं है, अंधकार मृत्यु भी है। और आलोक आलोक ही नहीं है, अमृत भी है। असतो मा सद्गमय। असत से सत की ओर ले चलो, क्योंकि अंधकार से बड़ा असत और जगत में कोई भी नहीं है। अंधकार की कोई सत्ता नहीं है। अंधकार बिल्कुल असत है। इसलिए तो तुम अंधकार के साथ सीधा कुछ करना चाहो तो नहीं कर सकते। अंधकार को धक्के देकर निकाल नहीं सकते। है ही नहीं तो धक्का किसको दोगे? अंधकार को तलवारों से नहीं काट सकते; है ही नहीं, काटोगे किसको? अंधकार के साथ प्रत्यक्ष कुछ भी करने का उपाय नहीं है। अंधकार के साथ कुछ करना हो, तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है। अंधकार की अपनी कोई सत्ता और अस्तित्व नहीं है। अंधकार तो केवल प्रकाश का अभाव है। अगर अंधकार हटाना है, तो प्रकाश जलाना पड़ेगा। अंधकार में कोई ठोसपन नहीं है। अंधकार सिर्फ गैर-मौजूदगी है, अभाव है, रिक्तता है; असत है।

दूसरा पहलू

याद है वह वक्त जब एक टीवी पर पूरा मोहल्ला सीरियल देखता था। अब मोबाइल में सब कुछ होने पर भी वह आनंद नहीं है।

याद बहुत आते हैं वो दूरदर्शन वाले दिन

मुकुल श्रीवास्तव

2024 में डीटीएच सेवाओं के सब्सक्राइबर करीब 40 लाख कम हो गए। ओटीटी उपयोगकर्ताओं की संख्या करीब 54 करोड़ पहुंच गई।

अब किसी एप पर क्रिकेट मिलेगा, तो किसी पर सास-बहू सीरियल, तो वहीं कोरियन ड्रामा देखना है, तो वो अलग ओटीटी पर मिलेगा। तो सवाल यही है कि क्या हम फिर उसी जगह आ गए, जहां से चले थे।

दूरदर्शन का वह दौर याद करें, जब घरों में एक ही टीवी होता था और रिमोट के लिए बच्चों में खींचतान आम बात थी। बच्चे स्कूल से आते ही *शक्तिमान* को देखने के लिए टीवी स्क्रीन के सामने जुट जाते थे, *चित्रहार* की धुन का पूरा परिवार मिलकर लुत्फ उठाता था और *रामायण, महाभारत* के प्रसारण के समय तो मोहल्लों की गलियां तक खाली हो जाया करती थीं। वे पल अब यादों में रह गए हैं। अब हर हाथ में अपनी एक छोटी स्क्रीन है। ओटीटी प्लेटफॉर्म ने टीवी को अब जेब में समेट दिया है।

दर्शक अब पारंपरिक टीवी को छोड़कर ज्यादा निजी और इंटरैक्टिव अनुभव के लिए सोशल मीडिया और ओटीटी एप का रुख कर रहे हैं। ट्राई की रिपोर्ट के मुताबिक, 2024 में डीटीएच सेवाओं के सक्रिय सब्सक्राइबर करीब 40 लाख कम हो गए। साल 2024 में भारत में ओटीटी उपयोगकर्ताओं की संख्या करीब 54 करोड़ पहुंच गई है। नैल्सेन के मुताबिक, भारत सबसे तेजी से बढ़ता हुआ स्ट्रीमिंग बाजार है। इस वर्ष फरवरी में लॉन्च हुए जियो हॉटस्टार प्लेटफॉर्म ने 28 करोड़ पेड सब्सक्राइबर्स का आंकड़ा पार कर लिया है। जियो हॉटस्टार ने भारत में अमेजन प्राइम (दो करोड़) और नेटफ्लिक्स (एक करोड़) को पीछे छोड़ दिया है। आज का दर्शक कंटेंट सिर्फ देखने भर के लिए नहीं देखता, वह उसे अपने समय, सुविधा और मनःस्थिति के अनुसार चुनना चाहता है। ओटीटी प्लेटफॉर्म दर्शकों की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर विज्ञापन मुक्त वाले सब्सक्रिप्शन पेश कर रहे हैं। ओटीटी प्लेटफॉर्म ने चुनने की आजादी तो दी है, मगर ऑटो प्ले नेक्स्ट एपिसोड, सजेस्टेड फॉर यू जैसे मनोवैज्ञानिक ट्रिगर का उपयोग करके हमें बिंज वॉच में फंसा लेते हैं। अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ सेंट्रल फ्लोरिडा में हुए एक अध्ययन के मुताबिक, बिंज वॉचिंग से चिंता, अवसाद और नींद की गुणवत्ता में गिरावट आ सकती है। नेल्सन के कंज्यूमर इंटेलिजेंस सर्वे के मुताबिक, करीब 66 प्रतिशत प्रतिभागी लगातार पांच घंटे से अधिक बिंज वॉचिंग करते हैं।

अब किसी एप पर आपको क्रिकेट मिलेगा, तो किसी पर सास-बहू सीरियल, तो वहीं कोरियन ड्रामा देखना है, तो वो अलग ओटीटी पर मिलेगा। तो सवाल यही है कि क्या हम फिर उसी जगह आ गए, जहां से चले थे। फर्क बस इतना है कि पहले रिमोट से चैनल को बदलने की आजादी थी, अब एप बदलने की है। दूसरी ओर, ये बदलाव हमारे पुराने टीवी देखने के उस मजेदार दौर को भी पीछे छोड़ आया है, जब परिवार साथ बैठकर एक ही स्क्रीन पर कहानी का हिस्सा बनता था।

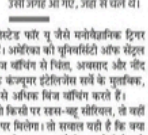

आंकड़े

नेट एनपीए

बीते आठ वर्षों में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की शुद्ध गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (नेट एनपीए) में काफी कमी आई है, जो बैंकों के लिए अच्छे संकेत हैं।

मार्च 2017	5.5%
मार्च 2021	2.4%
मार्च 2023	1.0%
मार्च 2024	0.6%
मार्च 2025	0.5%

आंकड़े नेट एनपीए के प्रतिशत में | स्रोत : RBI

एक शिष्य ने गुरु से पूछा, 'आप इतने शांत व सौम्य कैसे रहते हैं।' उन्होंने कहा, 'हर दिन को जीवन का अंतिम दिन मानकर ईश्वर का ध्यान करोगे, तो क्रोध नहीं आएगा।'

गुरु की सीख

अंतर्यात्रा
संकलित

एक संत अपने शांत और सौम्य स्वभाव के लिए बहुत प्रसिद्ध थे, लेकिन उनका एक शिष्य बहुत ही क्रोधी स्वभाव का था। शिष्य ने कहा, 'गुरु जी आप इतने शांत कैसे रहते हैं? गुरु जी ने कहा कि तुम संध्या को मेरे पास आना मैं तब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा और साथ ही तुम्हारे भविष्य के बारे में भी बताऊंगा। शिष्य ने गुरु को प्रणाम कर विदा ली।

संध्या को गुरु गंभीर स्वर में बोले कि मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने से पहले तुम्हारे भविष्य के बारे में बताना चाहता हूं। तुम्हारे जीवन के केवल सात दिन शेष बचे हैं। इसलिए पहले तुम जाओ और वह कार्य कर लो, जो तुम को लगता है कि तुम्हें मृत्यु से पूर्व कर लेने चाहिए। शिष्य चल पड़ा और छह दिन के बाद लौटकर आया। गुरु ने पूछा, 'इन दिनों में गुस्सा किया?' शिष्य ने गंभीर होकर कहा, 'गुरुदेव जीवन के केवल सात दिन शेष बचे हैं। इसलिए मैंने सबसे विनम्रतापूर्वक बात की। क्रोध आने पर भी धैर्य को बनाए रखा। इतना ही नहीं, जिन लोगों से मैंने पूर्व में बुरा बर्ताव किया था, उनसे क्षमा मांगी। लोगों ने क्षमा कर दिया।

गुरु मुस्कराते हुए बोले, 'अब शायद तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा।' शिष्य ने आश्चर्य भरी निगाहों से गुरु की ओर देखा। गुरुदेव कहने लगे कि मैं जीवन के प्रत्येक दिन को अपना अंतिम दिन मानकर ईश्वर का ध्यान करता हूं और किसी पर भी क्रोध नहीं करता। उस दिन से उस शिष्य का जीवन बदल गया।

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 10 जुलाई, 1952

अमेरिका भारत को कोरिया में शांति का श्रेय नहीं देना चाहता

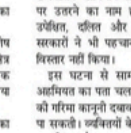

भारत ने कोरिया के युद्ध को बंद करने के लिए जो अपना पांच सूत्री कार्यक्रम संयुक्त राष्ट्र व कम्युनिस्टों के सामने रखा था, उसे अमेरिका ने पसंद नहीं किया। वह भारत को कोरिया में शांति कराने का श्रेय नहीं देना चाहता।

बदलाव के लिए सामाजिक चेतना चाहिए

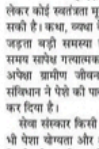

इटावा के कथा प्रकरण से तो यही लगता है कि आजादी के 75 साल बाद भी धार्मिक क्रियाकलापों की दृष्टि से समाज वहीं डेढ़ सौ साल पीछे खड़ा है।

श्यौराज सिंह बेचैन | मुद्दा

विगत माह इटावा के दादरपुर गांव में हुए कथा प्रकरण की अनुगूंजें थमने का नाम नहीं ले रही हैं। यथार्थ यह है कि भारतीय समाज में पेशों को लेकर कोई स्वतंत्रता मूलक व्यवस्था व्यवहृत नहीं हो सकी है। कथा, व्यथा के पीछे राजतंत्र की सामाजिक जड़ता बड़ी समस्या है। स्वभाव और संस्कारों में समय सापेक्ष गत्यात्मकता नहीं है। नगरीय जीवन की अपेक्षा ग्रामीण जीवन ठहर सा गया है। यद्यपि संविधान ने पेशे की पाबंदियों से नागरिकों को आजाद कर दिया है।

सेवा संस्कार किसी जाति की बपौती नहीं हैं, कोई भी पेशा योग्यता और क्षमता के अधीन है, तदनुसार किसी भी नागरिक को कोई भी पेशा अपनाने की स्वतंत्रता है। वंशानुगत आधार मानकर एक बार महात्मा गांधी ने परामर्श दिया था कि व्यक्ति को माता-पिता के पैतृक पेशे को अपनाना चाहिए। इससे उसे विरासत के अनुभव का लाभ मिलेगा। परंतु डॉ. बीआर आंबेडकर को लगा, पेशों के भेदभाव के साथ जातिगत भेदभाव की जड़ें भी पुष्ट होती रहेंगी, और स्वतंत्रता सापेक्ष समतामूलक समाज निर्माण का उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

कथा-वाचन का पेशा परंपरा से एक जाति विशेष तक सीमित होने के कारण उत्तर प्रदेश के इटावा क्षेत्र में दो यादवों द्वारा कथा-वाचन करने पर कथा-वाचक ब्राह्मणों गैर-यादव व उनके समर्थकों की प्रतिक्रिया गंभीर थी।

कथा वाचकों को लगा यह उनके पेशे का उनका एकाधिकार उनसे छीना जा रहा है। पेशों की यह पेचीदगी सामंती युग की याद दिलाती है। घटनाएं हमें अतीत में ले जाती हैं। डेढ़ सौ साल पहले जब ज्योतिबा फुले ने सत्यशोधक समाज के तहत शूद्रों के विवाह, कथा आदि पढ़ने के अनुष्ठानों को ब्राह्मणों द्वारा बहिष्कार किए जाने पर पढ़े-लिखे शूद्रों से पंडिताई का पेशा कराना आरंभ किया, तो ब्राह्मणों ने ब्रिटिश अधिकारियों से शिकायत की, कि हमें दान दक्षिणा से होने वाली आय समाप्त हो गई है। हमसे पूजा कराएं, न कराएं दान हमें दिलाइए।

लगता है आजादी के 75 साल बाद भी धार्मिक सांस्कृतिक क्रियाकलापों की दृष्टि से समाज वहीं डेढ़ सौ साल पीछे खड़ा है। स्वतंत्रता के समानता मूलक व्यवहार जाति भेद के अभ्यस्त लोग युगीन मूल्यों को आत्मसात ही नहीं कर पा रहे हैं। ऐसा नहीं है कि शूद्रों के साथ ही ऐसा होता है। खुद शूद्र दलितों का अपमान करते हैं। 2017 में जब सपा की सरकार थी। दलित उत्पीड़न का ग्राफ बढ़ गया था। हाल यह है कि राजनीतिक लोकतंत्र सामाजिक लोकतंत्र की जमीन पर उतरने का नाम ही नहीं ले रहा। दरअसल, उपेक्षित, दलित और कथित नीची जातियों की सरकारों ने भी पहचान की वास्तविक चेतना का विस्तार नहीं किया।

इस घटना से सामाजिक सुधार आंदोलन की अहमियत का पता चलता है। संविधान प्रदत्त व्यक्ति की गरिमा कानूनी दबाव से अमल में स्थायी रूप नहीं पा सकती। व्यक्तियों के स्वाभिमान और संस्कारों में आधुनिक और सभ्य बनाने की प्रक्रिया चलती रहनी चाहिए। 'जाति तोड़ो', 'समाज जोड़ो' रोटी बंदी बेटी बंदी जैसे नारे निर्जीव कैसे हो रहे हैं?

उत्तर प्रदेश में जातियों का यह रूप चिंताजनक इसलिए भी है कि यहां दलितों-पिछड़ों की सरकारें पिछले तीन दशक तक रही हैं। तो जाहिर है राजनीति में उनकी जो भी हैसियत बनती रही हो, सामाजिक नजरिये में वह बदलाव नहीं आया है। यह एकमात्र घटना नहीं है। अन्य रूपों में भी जाति अपमान की घटनाएं प्रकट हो रही हैं। मसलन, जब यह टिप्पणी लिखी जा रही है बरात चढ़ने से रोकना, प्रेम विवाह पर पिटाई और बहिष्कार आम खबरें हैं। जब तक सामाजिक चेतना का विस्तार नहीं होता, वास्तविक लक्ष्य को पाना मुश्किल है।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष और सीनियर प्रोफेसर हैं)

मोदी का संबोधन

भविष्य का एजेंडा

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने स्वास्थ्य, पर्यावरण तथा 'कॉप 30' पर ब्रिक्स सम्मेलन को संबोधित कर इसका भविष्य का एजेंडा निर्धारित कर दिया। इस संबोधन से भारत 'ग्लोबल साउथ' की महत्वपूर्ण आवाज बन कर उभरा है। हर उपलब्ध वैश्विक मंच पर भारत ने बार-बार इस ग्रह और इसके पर्यावरण को बचाने के लिए एकीकृत दृष्टिकोण अपनाने की पैरवी की है। यह तार्किक तथा करने योग्य है क्योंकि पर्यावरण सभी देशों की साझा जिम्मेदारी है। यदि कोई एक देश बेलगाम तरीके से ग्रीनहाउस गैसें छोड़ कर इस परिवेश को प्रदूषित करता है तो उसका प्रभाव सारी दुनिया पर पड़ेगा। ठीक इसी अवधारणा से प्रधानमंत्री मोदी ने हालिया ब्रिक्स सम्मेलन को 'पर्यावरण, कॉप-30 व वैश्विक स्वास्थ्य' विषय पर संबोधित किया। भारत अगले साल ब्रिक्स की अध्यक्षता करेगा और इस संदर्भ में प्रधानमंत्री मोदी का संबोधन और ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। उन्होंने न केवल टिकाऊ विकास व सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए भारत की दृढ़ प्रतिबद्धता प्रकट की, बल्कि भविष्य की कार्ययोजना का भी संकेत दिया। 'ग्लोबल साउथ' को विकसित दुनिया से अलग रास्ता अपनाना चाहिए क्योंकि उनके पास काफी ज्यादा संसाधन और हाइटेक समाधान हैं, जिनको वे आमतौर से साझा करने में हिचकते हैं। विडंबना है कि ये देश ही सबसे बड़े प्रदूषक हैं। यह असंतुलन खराब होती जलवायु परिस्थितियों के लिए मुख्यतः जिम्मेदार है जिससे स्वास्थ्य क्षेत्र में असमानतायें बढ़ रही हैं तथा 'ग्लोबल साउथ' में अनेक चीजों की मांग भी बढ़ रही है। मोदी ने एक मूलभूत सत्य सामने रखते हुए अपना संबोधन शुरू किया। उन्होंने कहा कि भारत के लिए जलवायु परिवर्तन केवल ऊर्जा या उत्सर्जन का सवाल न होकर जीवन और प्रकृति के बीच संतुलन पुनः बहाल करने का मामला है। उन्होंने जोर दिया कि जलवायु चेतना पसंद नहीं, बल्कि नैतिक जिम्मेदारी है और भारत इसे पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध है।

प्रधानमंत्री मोदी के शब्द सारहीन नहीं थे क्योंकि भारत ने हमेशा अपनी कथनी पर अमल किया है। भारत ने पेरिस जलवायु समझौते के लक्ष्यों को समय से पहले पूरा किया है और वह प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में सबसे तेज वृद्धि दर बनाए रखने में भी सफल हुआ है। मोदी ने पर्यावरणीय कार्रवाई के प्रति भारत का विशिष्ट दृष्टिकोण रेखांकित किया जिसमें वैश्विक नेतृत्व के साथ जमीनी सहभागिता भी शामिल है। उन्होंने 'इंटरनेशनल सोलर एलायंस', 'कोलीशन फार डिजास्टर रिजीलिएंट इन्फ्रास्ट्रक्चर', 'बायोफ्यूल एलायंस' तथा 'इंटरनेशनल बिग कैट एलायंस' जैसे प्रयासों का अपने संबोधन में उल्लेख किया। इनमें से प्रत्येक विकास पर भारत के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त देता है जो ग्रह-हितैषी होने के साथ ही जन-हितैषी भी है। 'मिशन लाइफ'-पर्यावरण के लिए जीवनशैली तथा 'एक पेड़ मां के नाम' जैसी पहलों ने हर नागरिक के जीवन में टिकाऊपन ला दिया है तथा पर्यावरण की जिम्मेदारी को केवल नीतिगत लक्ष्य से आगे बढ़ाते हुए व्यक्तिगत व्यवहार में बदल दिया है। मोदी ने विश्व जलवायु संवाद में विकासशील देशों के लिए वित्त और तकनीक तक सरल पहुंच का आह्वान किया। 'ग्लोबल साउथ' की एक मुख्य चिन्ता सार्वजनिक स्वास्थ्य है। इस क्षेत्र को अभी अच्छे स्वास्थ्य व फिटनेस मानकों तक पहुंचने के लिए लंबी दूरी तय करनी है। मोदी ने 'एक धरती, एक स्वास्थ्य' का सिद्धान्त सामने रखा है। इसने वैश्विक महामारी तथा व्यापक स्वास्थ्य राजनय के प्रति भारत की प्रतिक्रिया परिभाषित की है। कोविड-19 संकट के दौरान भारत ने अग्रणी भूमिका निभाते हुए अनेक देशों व खासकर 'ग्लोबल साउथ' को वैक्सीन और चिकित्सा सहायता उपलब्ध कराई। भारत के नेतृत्व में अगले साल ब्रिक्स 'ग्लोबल साउथ' के स्वरों और आवश्यकताओं को प्राथमिकता देने के साथ ही एक जन-केन्द्रित व मानवता-प्रथम दृष्टिकोण अपनाएगा। मजेदार बात है कि प्रधानमंत्री मोदी ने ब्रिक्स का नया नामकरण 'बिल्डिंग रिजीलियेंस एंड इनोवेशन फार कोआपरेशन एंड सस्टेनेबिलिटी' किया है। मोदी के संबोधन से संकेत मिलता है कि नई दिल्ली न केवल आकांक्षा, बल्कि संवेदना तथा कार्रवाई में नेतृत्व के लिए तैयार है।

प्रगाढ़ होते भारत-नेपाल संबंध

नेपाली विदेश मंत्री अर्जू राना ने द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय अधिकारियों से उनके व्यक्तिगत संपर्कों ने प्रधानमंत्री ओली की संभावित यात्रा से बहुत उम्मीदें जगाई हैं।

अशोक के. मेहता
(लेखक, सेवानिवृत्त मेजर जनरल हैं)

भारत-नेपाल संबंध प्रगाढ़ होते जा रहे हैं। नेपाली विदेश मंत्री अर्जू राना ने द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय अधिकारियों से उनके व्यक्तिगत संपर्कों ने प्रधानमंत्री ओली की यात्रा से बहुत उम्मीदें जगाई हैं। इसके चलते रायसीना हिल ने 15-17 जुलाई तक ओली की काठमांडू यात्रा का पूर्वानुमान लगाया था। जुलाई प्रधानमंत्री मोदी के लिए बहुत व्यस्त समय है। इसमें 10 तारीख को समाप्त होने वाली उनकी पांच देशों की यात्रा, 22 तारीख को संसद का सत्र, 24 तारीख को एफटीए पर हस्ताक्षर के लिए ब्रिटेन की यात्रा तथा 26 को मालदीव की यात्रा शामिल हैं। इस प्रकार केवल जुलाई का तीसरा सप्ताह थोड़ा खाली है।

दिल्ली में नेपाल पर नजर रखने वालों को आश्चर्य है कि नेपाली विदेश मंत्री अर्जू राना लगातार अपने प्रधानमंत्री के.पी. ओली की भारत यात्रा के लिए निमंत्रण प्राप्त करने का प्रयास क्यों कर रही हैं। भारत में अपनी उपस्थिति या भारतीय उप-महाद्वीप के बाहर रहने पर वे अपने भारतीय समकक्ष से मुलाकात कर रही हैं। मस्कट में 'इंडिया फाउंडेशन' द्वारा आयोजित 'इंडियन ओसेन कान्फ्रेंस' के दौरान उन्होंने 23 फरवरी को 'द हिंदू' को बताया कि अप्रैल में बैंकाक में आयोजित बिमस्टेक बैठक के दौरान उनकी प्रधनमंत्री मोदी और ओली के बीच मुलाकात की उम्मीद थी। यह मुलाकात हुई। उनको उम्मीद है कि प्रधानमंत्री ओली को '2025 के पहले अर्धांश' में दिल्ली से आमंत्रण की उम्मीद है।

विदेश मंत्री एस. जयशंकर के साथ वहां हुई बैठक में उन्होंने आमंत्रण पर चर्चा की और ऐसा पहली बार नहीं हुआ। जुलाई, 2024 में ओली के प्रधानमंत्री बनने के बाद सुश्री राना दो बार दिल्ली आ चुकी हैं। ओली का प्रधानमंत्री बनना दो प्रतिद्वंदियों और विरोधियों सीपीएन-यूएमएल व एनसी के बीच आश्चर्यजनक गठबंधन से संभव हुआ। पिछले साल सितंबर में सुश्री राना का दिल्ली में जोरदार स्वागत हुआ और उन्होंने प्रधानमंत्री मोदी तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारियों से मुलाकात की जिससे बहुत से लोगों को काठमांडू में आश्चर्य हुआ। इस प्रकार उन्होंने नेपाली कांग्रेस की नेता तथा यूएमएल-नीत सरकार में मंत्री के तौर पर अपनी शक्ति और प्रभाव प्रदर्शित किया। आखिरकार उन्होंने भाजपा विदेश नीति प्रकोष्ठ प्रमुख विजय चौथाईवाले को राखी बांधी थी और वे दिल्ली में किसी मंत्री से मिल सकती हैं। एक नेपाली पत्रकार ने मुझे पिछले सप्ताह बताया कि वे अब एनसी में बड़ी नेता हैं। दिसंबर, 2024 में दिल्ली से गुजरते हुए राना ने बीटूबी भारत-नेपाल आर्थिक सम्मेलन में भाग लिया था। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा था कि नेपाल को जल्द ही दिल्ली से प्रधानमंत्री ओली को आमंत्रण मिलने की आशा है।

हालांकि, भारत सरकार ने उनका अतिथि सत्कार किया, पर उन्होंने दिल्ली के नेपाली दूतावास में ठहरना पसंद किया। उस समय उनकी मुलाकात प्रधानमंत्री मोदी या विदेश मंत्री एस. जयशंकर से नहीं हो सकी थी क्योंकि ये दोनों नेता देश के बाहर थे। भारत में रहने के समय आमतौर से वे अपनी यात्रा को चिकित्सा जांच से जोड़ देती हैं जो नेपाली नेताओं की भारतीय नेताओं से मुलाकात के एक बहाने की तरह प्रयोग होती है। हालांकि, सुश्री राना के मामले में चिकित्सा जांच का कारण उचित है। राना अत्यधिक बुद्धिमान व समझदार आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामी हैं जिसने दिल्ली को प्रभावित किया है। उनकी एस. जयशंकर से कई बार मुलाकात हो चुकी है जिसमें पिछले साल न्यूयार्क में हुई मुलाकात शामिल है। उनके बीच बहुत अच्छे संबंध हैं। वे कोई साधारण व्यक्ति न होकर पांच बार प्रधानमंत्री रह चुके शेर बहादुर देउबा की पत्नी हैं जिनके 2026 में पुनः प्रधानमंत्री बनने की आशा है। ऐसा ओली के सत्ता-साझा गठबंधन के कारण संभव हो सकता है जो कुछ समस्याओं के बावजूद पिछले साल से लागू है। हालांकि, एनसी में पार्टी अध्यक्ष का चुनाव दो साल के लिए टाल दिया गया है, पर राना को उम्मीद है कि वे देउबा के स्थान पर पार्टी की अध्यक्ष या 2028 में चुनाव के बाद एनसी संसदीय दल की नेता बन सकती हैं। परंपरागत रूप से भारत यूएमएल की तुलना में एनसी के साथ ज्यादा सहज अनुभव करता है, हालांकि नेपाल के वर्तमान निचले सदन में 60 प्रतिशत कम्युनिस्ट हैं और कुछ समय पहले तक उच्च सदन में सीपीएन-माओवादियों का बहुमत था।

मस्कट में भारतीय विदेश मंत्री एस. जयशंकर के साथ बैठक में नेपाली विदेश मंत्री सुश्री अर्जू राना ने कई अन्य मुद्दों पर भी चर्चा की थी जिनमें चीन द्वारा बनाए भैरहवा व पोखरा अंतरराष्ट्रीय हवाईअड्डों के लिए भारत के ऊपर से उड़ान का अधिकार शामिल है। भारत को भैरहवा के निकट गोरखपुर के ऊपर से होकर उड़ान पर आपत्ति है क्योंकि वहां जगुआर विमानों के दो स्क्वार्डन तैनात हैं। लेकिन यह कोई गंभीर आपरेशनल मामला नहीं है। वास्तव में भारत चीन से जुड़ी हर चीज पर बहुत सतर्कता से गौर करता है और इस मामले में विशेष सावधानी बरतता है। दिल्ली ने चीन द्वारा निर्मित पनबिजली परियोजनाओं या चीनी सहायता से सीमापार बनने वाले दक्षिण एशिया इनर्जी ग्रिड से किसी प्रकार की बिजली खरीद की भी अनुमति नहीं दी है। राना ने मार्च में 'रायसीना डायलाग' में हिस्सा लिया था और जयशंकर से मुलाकात की थी। लेकिन जब भारत से आमंत्रण मिलने पर उनका धैर्य जवाब देने लगा तो ओली ने पहले चीन यात्रा का निर्णय किया जो भारत की पहले यात्रा करने की परंपरा के विपरीत था। उन्होंने क्रियान्वयन के लिए चीन में बीआरआई ढांचा समझौते पर हस्ताक्षर भी किए।

हालांकि, नेपाल और चीन के बीच बीआरआई परियोजना पर 2017 से विचार हो रहा था, पर इसके पहले पूर्व प्रधानमंत्री प्रचंड या अन्य नेपाली प्रधानमंत्रियों ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। एनसी ने जोर दिया था कि वह बीआरआई के लिए केवल सहायता-अनुदान स्वीकार करेगा आर कर्ज किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं होगा, भले ही वह रियायती दरों पर ही क्यों न हो। एक समय दिल्ली के 'पसंदीदा' रहे ओली ने अपनी विरोधाभासी घोषणाओं से भारत को आश्चर्यचकित किया है। हाल ही में उन्होंने भारत की ओर संकेत करते हुए संसद में कहा था कि 'हम दुष्ट पड़ोसी नहीं हैं।' प्रधानमंत्री के रूप में अपने पिछले कार्यकालों में उन्होंने अपने देश में राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने के लिए भारत को असहज करने वाली टिप्पणियां की थीं। दिल्ली के साउथ ब्लाक में अधिकारियों का कहना है कि वे चीन से उसके बढ़ते संबंधों के बावजूद नेपाल का बहुत सम्मान करते हैं।

काठमांडू दिल्ली-बीजिंग क बीच संबंध सुधरने, भारत-चीन सीमा पर शांति और सद्भावना तथा उनके बीच संबंध सामान्य होने से प्रसन्न है। चीन द्वारा 2017 की तरह 2028 के चुनाव में वामपंथी गठबंधन बनाना आसान नहीं होगा क्योंकि सभी पूर्व सांसद कम्युनिस्ट नेताओं के बीच गहरे मतभेद हैं। लेकिन वह इसका प्रयास जरूर करेगा।

भाजपा नेता राम माधव के आमंत्रण पर देउबा फरवरी में प्रयागराज के महाकुंभ मेले में भाग लेने आने वाले थे, पर मोदी से मुलाकात की संभावना न होने के कारण उन्होंने इसे टाल दिया। भाजपा पिछले काफी समय से एनसी से संबंध बेहतर करने के प्रयास कर रही है। राना की दिल्ली यात्राओं के बारे में कहा जाता है कि वे भारतीय गोरखा ब्रिगेड नेताओं से मिलना चाहती हैं ताकि नेपाल में रहने वाले गोरखाओं को अग्निवीर योजना में शामिल होने का मौका मिल जाए। लेकिन यह संभावना नेपाली 100 रुपये के नोटों पर कालापानी और 'छुछे' को अपने मानचित्र में दिखाने से समाप्त हो गई। नेपाल ने अपनी मुद्रा छापने के लिए सबसे कम चीनी टेंडर स्वीकार किया था, लेकिन अभी वह चलन में नहीं आई है।

नेपाली प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के बारे में अनुमान पहली बार नहीं लगाए जा रहे हैं। इसके पहले भी तीन नेपाली प्रधानमंत्रियों-सुशील कोईराला, माधव नेपाल तथा झालानाथ खनल को भारत यात्रा का निमंत्रण नहीं मिला था।

ऐसे में नेपाली प्रधानमंत्री ओली की भारत यात्रा भी 'अनुमानों' के घेरे में है और क्या यह '2025 की पहली छमाही में संभव थी।' यदि ऐसा होता तो यह नेपाली विदेश मंत्री अर्जू राना की व्यक्तिगत विजय होती। इससे भारत की 'पड़ोसी प्रथम' नीति को भी बढ़ावा मिलता। वर्तमान स्थितियों को देखते हुए भारत-नेपाल संबंधों में राजनीतिक विश्लेषकों की दिलचस्पी बनी हुई है।

पूर्वाग्रह, ईर्ष्या व पक्षपात का निवारण

> “हम अक्सर काम, क्रोध, अहंकार, अभिमान और आसक्ति को त्यागने की बात करते हैं, लेकिन शायद हम पूर्वाग्रह, पक्षपात और ईर्ष्या को त्यागने पर उचित ज़ोर नहीं देते।”

ब्रह्मकुमार निकुंज
(लेखक, आध्यात्मिक उपदेशक हैं)

यह एक सच्चाई है कि हममें से ज्यादातर लोग तथ्यों को जानने से पहले ही पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो जाते हैं या किसी चीज पर अपनी राय बना लेते हैं। पूर्वाग्रह की शुरुआती मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं में से एक में इसे इस प्रकार वर्णित किया गया है : किसी समूह के प्रति या किसी व्यक्ति के प्रति, क्योंकि वह उस समूह का सदस्य है, दोषपूर्ण और अनम्य सामान्यीकरण पर आधारित एक विरोध।

यह व्याख्या हमें सबसे पहले यह बताती है कि पूर्वाग्रह कोई तार्किक या आधारित चीज नहीं है, बल्कि यह मान्यताओं, अर्धसत्यों और अनुमानों की एक श्रृंखला पर आधारित है। दूसरी बात, यह हमें बताती है कि पूर्वाग्रह सामान्यीकरण पर आधारित है - उन सभी विशेषताओं और गुणों पर जो हम किसी व्यक्ति में होने का अनुमान लगाते हैं, और यह पूरी तरह से इस तथ्य पर आधारित है कि वह किसी विशेष समूह का सदस्य है।

हम अक्सर काम, क्रोध, अहंकार, अभिमान और आसक्ति को त्यागने की बात करते हैं, लेकिन शायद हम पूर्वाग्रह, पक्षपात और ईर्ष्या को त्यागने पर उचित जोर नहीं देते। व्यावहारिक जीवन में, हम देखते हैं कि पूर्वाग्रह और पक्षपात के कारण व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान को सुनता ही नहीं, और यदि सुनता भी है, तो उसे संदेह, भय, घृणा या विरोध की दृष्टि से देखता है, और कई बार उसकी गलत व्याख्या करता है, उसमें कमियां निकालता है, और अनुचित रूप से उसकी आलोचना करता है। परिणाम यह होता है कि ऐसा व्यक्ति ऐसे बहुमूल्य ज्ञान से लाभ नहीं उठा पाता, भले ही उसे यह प्रेम और सद्भावना के साथ दिया जाए। वह इस प्रस्ताव को भी तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, और इसे कुछ स्वार्थी लोगों की रणनीति का एक हिस्सा मानता है। अक्सर ऐसे पूर्वाग्रही और पक्षपाती व्यक्ति के द्वार पर दस्तक देता है, परन्तु वह न तो उत्तर देता है और न ही द्वार खोलता है। वह न केवल उस सौभाग्य को अस्वीकार कर देता है जो उसे इतनी उदारता से दिया गया है, बल्कि वह दूसरों को भी उस उपहार को हड़पने नहीं देता। डॉक्टर शायद उस वायरस की पहचान न कर पाएं जिसने उसके मन को संक्रमित कर दिया है, लेकिन अध्यात्मवादी और योगी जानते हैं कि पूर्वाग्रह एक जहर है, एक परजीवी है, और एक अजीबोगरीब बीमारी है - सब कुछ एक साथ - जिसका इलाज करना बहुत मुश्किल है क्योंकि पूर्वाग्रही व्यक्ति खुद को रोगी नहीं मानता और उसे ठीक करने के सभी प्रयासों का विरोध करता है। पूर्वाग्रह और पक्षपात से ग्रस्त ऐसे व्यक्ति पर केवल दया ही की जा सकती है क्योंकि वह व्यक्ति सहानुभूति सहित सभी उपचारों का विरोध करता है। उसे पूर्वाग्रह के कीड़े ने इतनी बुरी तरह से काट लिया है, या उसे नए ज्ञान से इतनी तीव्र एलर्जी हो गई है कि ज्ञान के सार और सुगंध की पहली गंध आने पर भी वह सौ बार सूँघता है, या वह सच्ची आध्यात्मिकता के वातावरण में प्रवेश करते ही हाँफने और बेहोश होने लगता है। लेकिन हम उसे दुर्भाग्य या विचित्र रोग के क्रूर हाथों में नहीं छोड़ सकते और उसे सद्गुणों के नैतिक रंगमंच पर, परमपिता परमात्मा के पवित्र चिकित्सालय में, योग के शल्य-यंत्रों से, प्रेम की निश्चेतना, सद्भावना का ग्लूकोज लगाकर, और बाद में आध्यात्मिक ज्ञान से निर्मित औषधियों से, और योग नामक चिकित्सा पद्धति से उसका उपचार करके ऑपरेशन रेस्क्यू करना पड़ता है। ईर्ष्या, पूर्वाग्रह की तरह, एक खतरनाक रोग है। ईर्ष्यालु व्यक्ति जीवन के तथ्यों को न तो पचा पाता है और न ही सत्य को सहन कर पाता है। उसकी प्रेम धमनियाँ अवरुद्ध हो चुकी हैं, और इसलिए जब वह किसी दूसरे व्यक्ति को उच्च सफलता प्राप्त करते, अच्छी प्रगति करते, या अच्छा नाम कमाते देखता है, तो उसे एक प्रकार का हृदयाघात सा महसूस होता है।

ईर्ष्या व्यक्ति की आत्मा को इतना कमजोर कर देती है कि जब वह किसी दूसरे व्यक्ति की पदोन्नति या प्रशंसा सुनता है, तो वह सीधा खड़ा भी नहीं हो पाता। क्या यह एक विचित्र रोग नहीं है जो व्यक्ति की सहनशीलता, प्रशंसा या अनुमोदन के स्तर को कम कर देता है, जबकि उसे इसे बढ़ाना चाहिए? किसी दूसरे व्यक्ति की सफलता की खबर उसे परेशान करती है या उसे उबकाई लाती है और उसका मूड खराब कर देती है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो स्वार्थ नामक विष से ग्रस्त है।

ऐसा व्यक्ति हमेशा कुढ़ता, झुंझलाता, गुस्से में रहता है और कभी-कभी उबलता भी रहता है। वह प्रेशर कुकर में बैठा है, ईर्ष्या की भाप में उबलता हुआ फुफकार और सीटी बजा रहा है। वह शांति चाहता है और एक पूर्वाग्रही व्यक्ति के विपरीत, वह ठीक होना या राहत पाना चाहता है।

ध्यान उसे राहत का एहसास दिलाता है, और यह उसके अंदर सद्भावना और प्रेम का भंडार बनाता है जो अंततः उसे ईर्ष्या से मुक्त करता है। ईर्ष्या घृणा का जनक या पोषक है। यदि कोई व्यक्ति घृणा से मुक्त होना चाहता है, तो उसे ईर्ष्या को दूर करना होगा क्योंकि ईर्ष्या और शांति एक साथ नहीं रह सकते। सार्वभौमिक प्रेम ईर्ष्या का प्रतिकार है, और सार्वभौमिक प्रेम केवल ध्यान के माध्यम से ही उत्पन्न और पोषित किया जा सकता है। तो आइए ध्यान करना शुरू करें।

आप की बात

ट्रंप की नीतियां

टैरिफ विवाद की मनमानी नीति अमेरिका की पहचान बन चुकी है जो इस समय विश्व व्यापार जगत के लिए गंभीर चिंता की बात है। ऐसे में ब्रिक्स सदस्य देशों के आर्थिक हितों पर होती चोट के मद्देनजर सम्मेलन में ट्रंप की टैरिफ नीति की आलोचना स्वाभाविक ही थी। ट्रंप की प्रतिक्रिया में ब्रिक्स देशों पर अतिरिक्त टैरिफ थोपना स्थिति को और बिगाड़ सकता है। इस टकराव से चीन के बचने की कोशिश असफल होती नजर आ रही है क्योंकि अमेरिका की कूटनीति अब आर्थिक हथियारों पर केंद्रित होती जा रही है। ब्रिक्स द्वारा पहलगाम हमले की निंदा और आतंक के खिलाफ कार्रवाई की बात सराहनीय है। इसके उलट ट्रंप की नीति विरोधाभासों से भरी है वह आतंकवाद-समर्थक और आतंकवाद से पीड़ित देशों से समान संबंध रखना चाहते हैं। पाकिस्तान के प्रति उनका झुकाव उनके स्वार्थ आधारित व्यापारिक रवैये को उजागर करता है। भारत को स्पष्ट, संतुलित और दो-टूक कूटनीति के साथ अमेरिकी व्यवहार का मूल्यांकन करते हुए आगे बढ़ना चाहिए। अमेरिकी अस्पष्टता और दोहरी नीति से भारत को सतर्क रहकर अपने हितों की रक्षा करनी होगी। इस समस्या का समाधान पारदर्शी संवाद और आत्मनिर्भर नीतियों में निहित है। अब भारत को इसी पर फोकस करना चाहिए।

- **अमृतलाल मारू**, इंदौर

डायन के नाम पर हत्या

बिहार के पूर्णिया जिले के गांव टेटगामा में डायन के शक में 5 लोगों को जिंदा जला डालने की घटना निंदनीय है। यह घटना समूचे देश के लिए कलंकित कर देने वाली है। विडंबना की बात है कि देश में इतनी शैक्षिक, वैज्ञानिक प्रगति व विकास के बाद भी इस प्रकार के अंधविश्वास के चलते घटनाएं घटित हो रही हैं जो सरकार के शिक्षा-दीक्षा के सारे प्रयासों पर पानी फेरतीं दिखती हैं। यह पहली बार नहीं है। इसके पहले भी डायन के नाम पर कई महिलाओं को प्रताड़ित करके मार डाला गया है। इस प्रकार की अधिकांश घटनाएं सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों विशेषकर आदिवासी तथा पिछड़े क्षेत्रों में ज्यादा घटित होती है। इन क्षेत्रों में शिक्षा का वह अलख नहीं जगा है जो जागना चाहिए। यह घटना अहसास कराती व बताती है कि हम कितने शिक्षित व प्रगतिशील हैं? हम एक तरफ नए भारत के गुण गाते हैं, चांद पर पहुंच रहे हैं, लेकिन दूसरी तरफ इस प्रकार की तस्वीर नए भारत की छवि तोड़ने वाली हैं। इस प्रकार की घटना को चुनौती मानते हुए लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करना होगा तथा अंधविश्वास को दूर भगाने के लिए कारगर उपाय अपनाने होंगे। अन्यथा बिहार की यह घटना अंतिम नहीं मानी जा सकती है।

- **हेमा हरि उपाध्याय**, उज्जैन

चुनाव आयोग को अधिकार

बिहार में मतदाता सूची के सत्यापन को लेकर सोशल मीडिया पर फैलाए जा रहे भ्रामक वीडियो और पोस्ट न केवल लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर करते हैं, बल्कि चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता पर भी सवाल खड़ा करते हैं। ऐसे में चुनाव आयोग की सतर्कता व जवाबी कार्रवाई सराहनीय है, लेकिन इसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। चुनाव आयोग जैसे संवैधानिक संस्थान को केवल खंडन करने या तथ्य पेश करने की भूमिका तक सीमित रखना लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। चुनाव आयोग के पास उन तत्वों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त कानूनी अधिकार नहीं हैं जो चुनाव प्रणाली को बदनाम करने में लगे हैं। अनेक नेताओं द्वारा सुप्रीम कोर्ट में याचिकाएं दाखिल करना यह दिखाता है कि विपक्ष चुनावी हार से निराश होकर अब चुनाव आयोग की प्रक्रिया पर सवाल उठाने का प्रयास कर रहा है। पश्चिम बंगाल में भी बड़ी संख्या में बांग्लादेश के अवैध घुसपैठियों को मतदाता सूची में जोड़ा गया है। चुनाव आयोग को समुचित अधिकार दिए जाने चाहिए ताकि उसके निर्णयों को बार-बार अदालतों में अनावश्यक रूप से चुनौती न दी जा सके। इससे भारतीय लोकतंत्र और मजबूत होगा।

सुभाष बुड़ावन वाला, रतलाम

कागज बचाओ अभियान

कागज के उपयोग के बाद जलाने या फेंकने से बेहतर है कि उसे एकत्र कर कागज उद्योगों को रिसाईकिलंग के लिए उपलब्ध कराया जाये। एक टन पुनर्चक्रीकृत कागज उपयोग में लाने पर हम 17 पेड़, 2103 लीटर तेल, 4077 किलोवाट ऊर्जा, 31587 लीटर पानी और 266 किलोग्राम हवा को प्रदूषित होने से बचाते हैं। सरकारी कार्यालयों में एक-एक दस्तावेज की अनावश्यक रूप से कई-कई प्रतियां तथा चार लाइन की जानकारी के लिए भी फुलस्केप कागज का उपयोग करते हैं। आम चुनावों में यदि सिर्फ इवीएम का ही उपयोग किया जाये तो टनों कागज बचाया जा सकता है। कागजी मुद्रा पर ऑस्ट्रेलिया की तरह प्लास्टिक कोटिंग या वार्निश लेपन कर मुद्रा का जीवनकाल बढ़ा कर ढेर सारा कागज बचाया जा सकता है। इसी तरह सभी बड़े लेन-देन में डेबिट कार्ड के प्रयोग को आवश्यक व लोकप्रिय बना कर कागजी मुद्रा के प्रयोग को कम किया जा सकता है। ई-मेल सुविधा का अधिक से अधिक उपयोग व सॉफ्ट-कॉपी से किया गया हर लेन- देन या पत्राचार कागज बचायेगा। कागज बचाओ अभियान हमारी जरूरत है।

संदीप कुमार, मधुपुर

पाठक अपनी प्रतिक्रिया ई-मेल से
responsemail.hindipioneer@gmail.com
पर भी भेज सकते हैं।

राष्ट्रीय सहारा
नई दिल्ली • बृहस्पतिवार • 10 जुलाई • 2025
www.rashtriyasahara.com

पुराने वाहनों पर राहत

दिल्ली-एनसीआर में वायु प्रदूषण पर केंद्र के आयोग ने मंगलवार को राष्ट्रीय राजधानी में समय सीमा पूरी कर चुके वाहनों (ईओएल) में ईंधन भरने पर प्रतिबंध के कार्यान्वयन को एक नवम्बर तक स्थगित करने का फैसला किया है। दिल्ली में अब यह अभियान राष्ट्रीय राजधानी से सटे पांच उच्च वाहन घनत्व वाले जिलों गुरुग्राम, फरीदाबाद, गाजियाबाद, गौतमबुद्ध नगर और सोनीपत के साथ इसी साल एक नवम्बर से शुरू किया जाएगा। ईओएल वाहन 10 वर्ष से अधिक पुराने डीजल चालित वाहन और 15 वर्ष से अधिक पुराने पेट्रोल वाहन हैं। पहले जारी निर्देश में कहा गया था कि ऐसे वाहनों को एक जुलाई से दिल्ली में ईंधन नहीं दिया जाएगा, चाहे वे किसी भी राज्य में पंजीकृत हों। इस फैसले का क्रियान्वयन शुरू होते ही जनाक्रोश बढ़ा तो दिल्ली सरकार को अहसास होने लगा कि यह फैसला प्रतिगामी साबित हो सकता है। यह भी लगने लगा कि यह फैसला समय से पहले उठा लिया गया कदम है। क्रियान्वयन में परिचालनगत और ढांचागत चुनौतियां भी समझ आने लगीं। सरकार के हाथ-पांव फूलने लगे और उसने वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीक्यूएम) से ईओएल के खिलाफ कार्रवाई रोकने का अनुरोध किया। इस पर सीक्यूएम ने समीक्षा बैठक करके इस फैसले पर फिलवक्त रोक लगाने का निर्णय लिया है। दरअसल, यह फैसला जब नवम्बर में लागू किया जाएगा तब भी दिल्ली सरकार को तमाम चुनौतियों का सामना करना होगा। एक तो यह क्रियान्वयन इतना सख्त है कि एक भी ईओएल बचने नहीं पाएगा। ऐसे में जब्ती होगी। पुराने वाहन से वाहन स्वामियों का भावनात्मक लगाव होता है, इसके अलावा कई वाहन स्वामी अपने वाहनों को अच्छे से मेंटेन करके रखते हैं और उन्हें लगता है कि उनके वाहन प्रदूषणकारी नहीं हैं, जो सच भी होता है, तो ऐसे में उनकी जब्ती उन्हें पच नहीं सकेगी। बीते दिनों इस फैसले के क्रियान्वयन के पहले ही दिन जिस तरह वाहन पेट्रोल पंपों पर जब्त करके वाहन स्वामियों को 'पैदल' कर दिया गया उससे खासा जनाक्रोश पनपा। वाहन स्वामियों के नजरिए से देखें तो उन्हें गलत नहीं कहा जा सकता। बेशक, प्रदूषण नियंत्रण के नाम पर की जाने वाली किसी भी कवायद या नियम-कायदे को खारिज नहीं किया जा सकता। लेकिन सरकार को इस तथ्य की भी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि नया वाहन खरीदने के लिए मध्यम या निम्न मध्यम वर्ग पर आर्थिक बोझ पड़ना तय है। नये वाहन के लिए ऋण आदि की सहूलियत दिया जाना जरूरी है। बिना इसके आने वाले समय में भी जनाक्रोश रोके नहीं रुकेगा।

चुनावी दांव

विधानसभा चुनाव से ऐन पहले महिला मतदाताओं को लुभाने के लिए बिहार सरकार ने सरकारी नौकरियों में 35% आरक्षण की बात की है। अब तक सभी महिलाओं को मिलने वाले इस आरक्षण पर नीतीश कैबिनेट ने डोमिसाइल नीति लागू की है। यह स्थानीय प्रमाणपत्र होता है। राज्य सरकारें इनके आधार पर स्थानीय युवाओं को सरकारी नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों और स्थानीय योजनाओं में प्राथमिकता देती हैं। इसके बाद अन्य राज्यों की महिलाएं भी सामान्य कोटे में आवेदन कर सकेंगी। यह व्यवस्था पहले ही हरियाणा, मप्र, हिप्र, राजस्थान और उत्तराखंड में लागू है। बिहार के युवा अन्य राज्यों की नीति के चलते नुकसान झेलने की बात करते रहे हैं। बैठक में कुल 43 एजेंडों पर मुहर लगी जिनमें युवा आयोग और दिव्यांगजन सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना भी है। दिव्यांगों को प्रोत्साहित करने तथा पुरुष दिव्यांग अभ्यर्थियों को पिछड़ा, सामान्य और आर्थिक तौर पर कमजोर युवाओं के लिए यह योजना है। बिहार में 60% जातीय-आर्थिक आरक्षण पहले से ही लागू है। 35% मूल बिहारी महिलाओं के इस आरक्षण के बाद यह बढ़ कर 74% पर पहुंच जाएगा जिसका सीधा असर अनारक्षित वर्ग पर पड़ेगा जिसके लिए बस 14% सीटें ही बचेंगी। वर्तमान में राज्य में 18% अतिपिछड़ा, 12% अन्य पिछड़ा, 16% एससी, एक प्रतिशत एसटी और ओबीसी महिलाओं का 3% आरक्षण लागू है। इसमें आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का 10% भी है। शीर्ष अदालत द्वारा आरक्षण की सीमा पर लगाम लगाने की नसीहतों को चुनौती देते हुए राज्य सरकारें चुनावी लाभ के लोभ में इस तरह की कवायद करती रहती हैं। समर्थकों और मतदाओं को लुभाने के आधार पर आरक्षण के जाल फेंकती हैं। विपक्ष का भी आरोप है कि मतदाताओं के रुझान का आभास होते ही नीतीश सरकार द्वारा यह दांव चला गया है। हालांकि देखने में आता है कि महिलाओं की लाभकारी योजनाओं का ऐलान करके पूर्ववर्ती सरकारों ने खासा चुनावी लाभ लिया था। मगर यह उन शिक्षित और जरूरतमंद महिलाओं के भविष्य के लिए बेहतर साबित हो सकता है, जो विभिन्न कारणों से नौकरी के लिए परिवार से दूर नहीं जा सकतीं। दिव्यांगों को सिविल सेवा के लिए तैयार करने की यह योजना यदि सार्थक रहती है, तो इसे देश के स्तर पर लागू करने के प्रयास भी होने चाहिए।

कटाक्ष/ सहीराम

अब कागज तुम्हीं दिखाओगे

कल तक बड़े नारे गूंज रहे थे और गाने गाए जा रहे थे कि जनाब हम कागज नहीं दिखाएंगे। पर अब नहीं दिखाओगे तो वोट कट जाएगा। लोग कह रहे हैं कि जब गृह मंत्री पूरे देश में एनआरसी करवाने की बात कह रहे थे और जब शाहीन बाग में कागज नहीं दिखाएंगे के नारे लगाए जा रहे थे तो वक्त रहते चुनाव आयोग का ट्यूशन क्यों नहीं लगवा दिया। भैया, वो क्रोनोलॉजी नहीं समझाते। वो तो झटके में आपके नाम पर वैसे ही कलम फेर देते, जैसे गर्दन पर चाकू।

खैर, एनआरसी के वक्त जिस क्रोनोलॉजी का इतना खौफ था, आज उससे भी ज्यादा खौफ चुनाव आयोग के गहन पुनरीक्षण का हो गया है। जी, लोग कह रहे हैं कि यह एनआरसी का ही दूसरा नाम है और रस्ता दूसरा है। इसीलिए लोग कह रहे हैं कि गुरु गुड़ ही रह गया और चेला शक्कर निकल गया। जी, लोग मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार को अमित शाह का चेला बता रहे हैं न इसलिए। उधर, पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त राजीव कुमार को अपनी काबलियत पर पहली बार शक हुआ होगा कि यार, महाराष्ट्र में वोट बढ़ा कर भक्ति-भजन करने का क्या फायदा हुआ, जब वोट काट कर उससे भी बड़ा भक्त बना जा सकता है। जी, लोग यही कह रहे हैं कि यह रिवर्स टाइप का महाराष्ट्र चुनाव प्रकरण है। महाराष्ट्र की मतदाता सूची में जब लाखों की संख्या में नाम जोड़े गए तो किसी ने पता तक नहीं पूछा। बिहार में मतदाता सूची से करोड़ों नाम कटने की आशंका हो रही है, तो लोग कह रहे हैं कि पता नहीं क्या-क्या पूछा जा रहा है। क्या-क्या कागज मांगे जा रहे हैं। लोग कह रहे हैं कि जी हमारे पास तो वोटर कार्ड है। चुनाव आयोग अपने ही वोटर कार्ड के बारे में कह रहा है-बेकार है। लोग कह रहे हैं कि हमारे पास आधार कार्ड भी है, पर चुनाव आयोग कह रहा है-बेकार है। अब सवाल मत पूछने लगना कि जब न वोटर कार्ड मान्य है, और न आधार कार्ड तो इनको बनाना आवश्यक क्यों किया गया था, क्यों एक पूरी व्यवस्था खड़ी की गई थी, क्यों हजारों करोड़ खर्च किए गए थे। चुनाव आयोग तो कह रहा है तुम तो अपना जन्मतिथि का प्रमाण पत्र दिखाओ, माता-पिता का जन्मतिथि प्रमाण पत्र दिखाओ। सीधी बात है कागज नहीं दिखाओगे तो वोटर नहीं रहोगे और वोटर नहीं रहोगे तो फिर नागरिक भी नहीं रहोगे। एनआरसी कंपलीट!

अनमोल वचन

जैसे-जैसे आदमी की उम्र बढ़ती है, खिलौने और महंगे होते जाते हैं।
-मार्विन डेविस

रच दिया इतिहास

बिहार में ई-वोटिंग | प्रमोद भार्गव

देश में मतदान के प्रति अरुचि प्रत्येक चुनाव में देखने में आती रही है। रोगग्रस्त या लाचारों को तो छोड़िए, उच्च शिक्षित वर्ग भी मतदान के प्रति सबसे ज्यादा उदासीन रहता है। वैसे तो निर्वाचन आयोग मतदान का प्रतिशत और सुविधापूर्ण मतदान के लिए अनेक प्रयोग करता रहा है, लेकिन अब बिहार राज्य निर्वाचन आयोग ने नगर निकाय के उपचुनाव में पहली बार ई-वोटिंग का प्रयोग करके इतिहास रच दिया है। मोबाइल से ई-मतदान की सुविधा के चलते बिहार के इस चुनाव में 80.60 प्रतिशत और उपचुनाव में 58.38 प्रतिशत मतदाताओं ने मोबाइल के जरिए मतदान किया। पहली महिला ई-वोटर विभा कुमारी और पहले पुरुष मतदाता मुन्ना कुमार बने। राज्य निर्वाचन आयुक्त डॉ. दीपक प्रसाद ने मोबाइल से ई-मतदान कराए जाने की प्रेरणा यूरोपीय देश एस्टोनिया से ली थी।

चूंकि अब ई-वोटिंग का सफल प्रयोग हो चुका है, इसलिए भविष्य में इसका उपयोग बढ़ेगा। जो गर्भवती महिलाएं, बुजुर्ग, विकलांग, असाध्य रोगों से ग्रसित और अपने मतदान स्थल से दूर रहने वाले लोग मतदान से वंचित रह जाते थे, उन्हें अब लोकतंत्र के इस महायज्ञ में भागीदार बनने की आसान सुविधा मिल जाएगी। समस्या का सामाधान बिना अतिरिक्त खर्च के हो जाएगा। चूंकि मतदान केंद्रों पर विभिन्न दलों का जमावड़ा नहीं होगा इसलिए निष्पक्ष और शांतिपूर्ण मतदान की संभावना बढ़ जाएगी। मतदान की निजता भी प्रभावित नहीं होगी। मतदान के प्रतिशत में आशातीत सुधार तो होगा ही जातीय और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण की संभावनाएं भी न्यूनतम हो जाएंगी। ई-वोटिंग का काम पूर्वी चंपारण जिले की नगर पंचायत पकड़ी दयाल के अलावा पटना, बक्सर, रोहतास, सारण और बांका में सी-डैक और एसईआर के जरिए किया गया था।

बिहार के उपचुनाव में मोबाइल एप से ई-वोटिंग की प्रक्रिया प्रमाणित हो चुकी है। ई-वोटिंग को इसलिए भी अपनाया जाए क्योंकि पोस्टल वोटिंग का वैधानिक प्रावधान पहले से ही है। मतदान संपन्न कराने में जुटे कर्मचारी अपना वोट पोस्टल वोटिंग के जरिए ही देते हैं। अब कोई राजनीतिक दल और नेता बहाना नहीं बना सकता है कि इंटरनेट या बिजली की सुविधा दुर्गम क्षेत्रों में नहीं है। बिजली भले ही प्रत्येक गांव में न हो, लेकिन सौर ऊर्जा से बिजली और मोबाइल टॉवर गांव-गांव पहुंच गए हैं। इनके जरिए इंटरनेट की सुविधा हासिल कराई जा रही है। सौर जैसी वैकल्पिक ऊर्जा दूरदराज के गांवों में बिजली उपलब्ध करा रही है। फिर भी किसी गांव में बिजली नहीं है तो वहां ईवीएम के जरिए मतदान कराया जाए। हालांकि मोबाइल से ई-

वोटिंग को लेकर कुछ नेता संदेह जता रहे हैं। उनका कहना है कि मोबाइल एप पर पंजीकरण में कठिनाई आएगी। गांव के प्रभावीशाली लोग दबाव बना कर फर्जी मतदान भी करा सकते हैं।

चुनाव विशेषज्ञों का मानना है कि 45 करोड़ लोग पलायन के चलते मतदान से वंचित हो जाते हैं। इस नजरिए से प्रवासियों के लिए ई-वोटिंग उपयोगी है। हालांकि चुनाव सुधार की दृष्टि से चुनाव आयोग ने घर से दूर रहने वाले अर्थात दूरस्थ मतदाताओं के लिए रिमोट वोटिंग सिस्टम (आरवीएस) तैयार किया है। इस मशीन की मदद से मूल मतदान स्थल से दूर दूसरे राज्य या शहर में रहने वाले मतदाता लोक सभा और विधानसभा चुनाव में मत का प्रयोग कर सकते हैं यानी मतदान के लिए उन्हें अपने मूल निवास स्थल पर आने की जरूरत नहीं रह गई है। आयोग द्वारा इसे लागू करने से पहले आने वाली कानूनी, प्रशासनिक और तकनीकी चुनौतियों पर राजनीतिक दलों के विचार भी आमंत्रित किए जाएंगे। चुनाव सुधार की दृष्टि से यह पहल अमल में आती है तो ऐतिहासिक होगी। नतीजतन, उन 45 करोड़ लोगों को वोट डालने का अवसर मिलेगा जो अपने घरों से दूर रहते हैं। अनेक चुनाव विशेषज्ञ इस प्रणाली को क्रांतिकारी पहल मान रहे हैं। बेशक, आरवीएम की परिकल्पना क्रांतिकारी है। आईआईटी, मद्रास की मदद से 'मल्टी कॉन्स्टीचुएंसी रिमोट ईवीएम' के रूप में ऐसा मतदान उपकरण तैयार किया गया है, जो एक रिमोट मतदान केंद्र से 72 निर्वाचन क्षेत्रों में प्रवासियों का मतदान कराने में सक्षम होगा। लोकतंत्र की मजबूती के लिए आदर्श स्थिति यही है कि हरेक मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग करे। इस नाते 2005 में भाजपा के एक सांसद लोक सभा में 'अनिवार्य मतदान' संबंधी विधेयक लाए भी थे लेकिन समर्थन नहीं मिल पाने के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका। कांग्रेस और अन्य दलों ने इस विधेयक के विरोध का कारण बताया था कि दबाव डाल कर मतदान कराना संविधान की अवहेलना है क्योंकि संविधान में मतदान करना मतदाता का स्वैच्छिक अधिकार तो है, लेकिन वह इस कर्त्तव्य-पालन के लिए बाध्यकारी नहीं है। लिहाजा, वह इस राष्ट्रीय दायित्व को गंभीरता से न लेते हुए उदासीनता बरतता है।

हमारे यहां आर्थिक रूप से संपन्न-सुविधा भोगी जो तबका है, वह अनिवार्य मतदान को संविधान में दी निजी स्वतंत्रता में बाधा मानते हुए इसका मखौल उड़ाता है। मतदान की अनिवार्यता अथवा ई-वोटिंग या आरवीएम से सुविधा का मतदान कथित अल्पसंख्यक व जातीय समूहों को 'वोट बैंक' की लाचारगी से भी छुटकारा दिलाएगा। राजनीतिक दलों को भी तुष्टिकरण की राजनीति से निजात मिलेगी क्योंकि जब प्रवासियों को आरवीएम से मतदान की सुविधा मिल जाएगी तो किसी धर्म, जाति या क्षेत्र विशेष से जुड़े मतदाताओं की अहमियत खत्म हो जाएगी। नतीजतन, उनका संख्या बल जीत-हार को प्रभावित नहीं कर पाएगा। लिहाजा, सांप्रदायिक और जातीय आधार पर ध्रुवीकरण की जरूरत नगण्य हो जाएगी। जब पंजाब और जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद की छाया थी, तब वहां हुए विधानसभा चुनावों में 15 से 20 प्रतिशत मतदान से ही सरकारें बनती रही हैं। साफ है कि यह स्थिति लोकतंत्र के लिए उचित नहीं है। अधिकतम मतदान के हालात ई-वोटिंग एवं आरवीएम के इस्तेमाल से निर्मित होते हैं, तो भारतीय राजनीति संविधान के उस सिद्धांत का पालन करती दिखेगी जो सामाजिक न्याय और समान अवसर की बात कहता है।

(लेख में विचार निजी हैं)

> मतदान की अनिवार्यता अथवा ई-वोटिंग या आरवीएम से मतदान कथित 'वोट बैंक' की लाचारगी से भी छुटकारा दिलाएगा। धर्म, जाति या क्षेत्र विशेष से जुड़े मतदाताओं की अहमियत खत्म हो जाएगी। नतीजतन, उनका संख्या बल जीत-हार को प्रभावित नहीं कर पाएगा। जब पंजाब और जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद की छाया थी, तब वहां विधानसभा चुनावों में 15-20 प्रतिशत मतदान से ही सरकारें बन जाती थीं। साफ है, यह स्थिति लोकतंत्र के लिए उचित नहीं है

'दालों का राजा' मूंग
स्वाद के साथ सेहत का भी खजाना

- मूंग को कुछ लोग 'दालों का राजा' भी कह देते हैं। यह हल्की, सुपाच्य और पौष्टिक गुणों से भरपूर होती है। आयुर्वेद में इसे त्रिदोष नाशक (वात, पित्त और कफ को संतुलित करने वाली) माना जाता है
- अंकुरित मूंग बहुत ताकत और ऊर्जा का बड़ा सोर्स है। मूंग की खिचड़ी बीमार और कमजोर लोगों के लिए हल्का और पौष्टिक भोजन है। रात भर भिगो कर खाने से इसका पाचन और पोषण बढ़ जाता है, जबकि इसका सूप और दलिया ठंड में गर्मी और ऊर्जा प्रदान करते हैं
- हालांकि, अधिक मात्रा में मूंग दाल खाने से गैस की समस्या हो सकती है, इसलिए संतुलित मात्रा में ही इसका सेवन करना जरूरी है

(मीडिया इनपुट्स)

एक और घटना महाराष्ट्र की राजनीति में शर्मिंदगी बढ़ा गई है। हमारे नीति-निर्माता फुले, साहू, अंबेडकर की विरासत की बात तो करते हैं, लेकिन हकीकत में गुंडागर्दी इन सब पर भारी पड़ती है। विधायक होना कोई विशेषाधिकार नहीं है, बल्कि एक जिम्मेदारी है संजय गायकवाड़ जी!

राजदीप सरदेसाई, पत्रकार
@sardesairajdeep

हिन्दी विवाद | मोनिका चौहान

सियासी पैंतरा या भाषा की चिंता

हाल में कर्नाटक में बेंगलुरु मेट्रो के साइन बोर्डों पर हिन्दी के इस्तेमाल को लेकर छिड़ा विवाद अब स्थानीय मुद्दा नहीं रह गया है। धीरे-धीरे पूरे दक्षिण भारत में फैल चुका है। सोशल मीडिया से लेकर टेलीविजन डिबेट्स तक में गूंज रहा है। महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (एमएनएस) के कार्यकर्ता भी सक्रिय हो गए हैं। हाल में उन्होंने मुंबई के मीरा रोड पर मोर्चा निकाला जहां वे हिन्दी में लिखे साइन बोर्ड हटाने की मांग कर रहे हैं।

एमएनएस कार्यकर्ता जगह-जगह दुकानों और प्रतिष्ठानों पर जाकर मराठी में बोर्ड लगाने की अपील कर रहे हैं। हिन्दी में लिखे साइन बोर्डों को हटाने की चेतावनी दे रहे हैं। उनका यह भी कहना है कि मुंबई में रहने वालों को मराठी आनी ही चाहिए। इसे 'हिन्दी थोपने' के खिलाफ सांस्कृतिक लड़ाई के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। सोशल मीडिया पर **#StopHindiImposition** जैसे हैशटैग ट्रेंड कर रहे हैं, और राजनीतिक दल इसे भाषाई अस्मिता का मुद्दा बना कर भुना रहे हैं। इस विवाद ने दक्षिण बनाम हिन्दी की बहस को हवा दे दी है। कन्नड़ संगठनों और कुछ क्षेत्रीय नेताओं ने इसे 'हिन्दी थोपने' का प्रयास बताया है, वहीं सोशल मीडिया पर भी हिन्दी के खिलाफ तीखे स्वर उठे हैं।

यह कोई पहली बार नहीं हुआ। समय-समय पर दक्षिण भारत से हिन्दी विरोध के स्वर उठते रहे हैं, जो अक्सर क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के लिए वोट बैंक की राजनीति का साधन बन जाते हैं। ताजा विवाद याद दिलाता है, जब कन्नड़ अभिनेता किच्चा सुदीप ने 2022 में कहा था कि हिन्दी अब राष्ट्र भाषा नहीं रही। इस बयान पर बॉलीवुड अभिनेता अजय देवगन ने तीखी प्रतिक्रिया दी थी। कहा था कि हिन्दी राष्ट्र भाषा थी, है, और रहेगी। देखते ही देखते यह सांस्कृतिक बहस से खिसक कर राजनीतिक मुद्दा बन गया था। कर्नाटक के कई नेताओं ने तब भी हिन्दी पर सवाल उठाए थे। वही सिलसिला अब मेट्रो के साइन बोर्डों को लेकर फिर सिर उठा रहा है।

सवाल यह है कि आखिर, हिन्दी पर बार-बार का हमला क्यों? हिन्दी कोई थोपी गई भाषा नहीं, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम के दौर में लाखों भारतीयों के सपनों की

आवाज थी। गांधी, नेहरू, पटेल जैसे नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रीय एकता का माध्यम माना। आज भी हिन्दी उत्तर भारत की ही नहीं, बल्कि पूरे देश की संपर्क भाषा है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में हिन्दी बोलने वालों की संख्या 53 करोड़ से अधिक है। पिछले 50 सालों में हिन्दी बोलने वालों की आबादी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। हिन्दी न केवल उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान जैसे राज्यों की प्रमुख भाषा है, बल्कि महानगरों में भी प्रवासी भारतीयों के कारण लगातार फैल रही है। दक्षिण भारतीय भाषाओं की बात करें तो तेलुगु को 6.7%, तमिल को 5.7% और कन्नड़ को मात्र 3.6% लोग मातृ भाषा मानते हैं। फिर भी हिन्दी पर निशाना साधना राजनीतिक दलों के लिए सुविधाजनक मुद्दा बना हुआ है। हिन्दी का विरोध करने वाले अक्सर तर्क देते हैं कि हिन्दी का प्रभुत्व क्षेत्रीय भाषाओं को कमजोर कर देगा। पर क्या सचमुच ऐसा है? तथ्य तो यह कहते हैं कि हिन्दी और अन्य भाषाओं में सहअस्तित्व है। उदाहरण के लिए, दक्षिण भारत की ही फिल्म इंडस्ट्री को लें। कन्नड़ फिल्म केजीएफ-2ने हिन्दी डबिंग के दम पर लगभग 900 करोड़ रुपये की कमाई की। दक्षिण की फिल्मों को पैन-इंडिया हिट बनाने में हिन्दी का योगदान छुपा नहीं है।

यह भी सच है कि भारत की भाषाई विविधता उसकी ताकत है। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी, बंगाली जैसी भाषाएं हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। इन्हें बचाना और सहेजना जरूरी है। लेकिन इनकी अस्मिता को हिन्दी के विरोध के बहाने राजनीतिक मंच पर भुनाना खतरनाक प्रवृत्ति है। तमिलनाडु का इतिहास इस राजनीति का सबसे बड़ा उदाहरण है। 1937 में हिन्दी को स्कूलों में अनिवार्य बनाने के प्रयास के खिलाफ शुरू हुआ आंदोलन 1965 तक आते-आते हिंसक हो गया था। राजाजी (सी. राजगोपालाचारी) जैसे नेता इसे उत्तर भारतीय प्रभुत्व के प्रतीक के रूप में पेश किया करते थे। आज वही रणनीति कर्नाटक में भी दोहराई जा रही है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने हाल में न्यायपालिका में हिन्दी के उपयोग की वकालत कर हिन्दी प्रेमियों में उम्मीदें जगाई हैं पर सरकार को भी समझना होगा कि किसी भी भाषा को थोपना एकता को नहीं, बल्कि विभाजन को जन्म देता है। हिन्दी के प्रसार का मार्ग स्वाभाविक स्वीकार्यता से ही निकलेगा, न कि आदेशों या कानूनों से। दक्षिण भारत के कई नेता हिन्दी को 'आक्रमणकारी' भाषा की तरह पेश करते हैं। लेकिन सच यह है कि हिन्दी करोड़ों भारतीयों के दिलों की आवाज है। न केवल हमारी संस्कृति, बल्कि हमारी पहचान का भी हिस्सा है। हिन्दी पर वार दरअसल, भारत की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता पर चोट है। यह समय है कि क्षेत्रीय राजनीतिक दल इस तथ्य को समझें।

सखा | डॉ. ज्ञानानंददास स्वामी

सखा मित्र या दोस्त शब्द सुनते ही हमारा मन यादों, संवेदनाओं और खुशी से भर जाता है, और तत्काल ही मन में सबसे करीबी व्यक्ति की छवि मुखरित हो उठती है किंतु सच्चा सखा वह नहीं जो केवल सुख के समय साथ हो, हंसी-ठिठोली में सहभागी बने या समय काटने का साधन मात्र हो; सच्चा सखा वह होता है जो हृदय की गहराइयों को बिना कहे समझ ले, संकट की घड़ी में पतवार बन जाए, और जीवन यात्रा में दीपक की भांति मार्ग को आलोकित करे। वह न तो चाटुकार होता है, न आलोचक; न हां में हां मिलाता है, न केवल टोकता है-बल्कि वह ऐसा प्रतिबिंब होता है जो तुम्हें तुम्हारे सबसे प्रामाणिक रूप से परिचित कराता है। ऐसे सखा का होना सौभाग्य नहीं, बल्कि भगवान की सबसे मूल्यवान कृपा है। भगवीता में भगवान कृष्ण स्वयं अर्जुन को अनेक बार 'सखा' कह कर संबोधित कर रहे हैं। यह संबोधन मात्र सामाजिक संबंधों का संकेत नहीं देता, बल्कि गहन आध्यात्मिक योग्यता और आत्मीयता को भी प्रकट करता है। भगवान कृष्ण स्पष्ट करते हैं कि ऐसा रहस्य, जो साधारण जन को सुलभ नहीं, केवल उस व्यक्ति को बताया जा सकता है जो मित्रता और निष्कपट भक्ति के गुणों से युक्त हो। अर्जुन न केवल कृष्ण का पार्थिव मित्र है, बल्कि ऐसा साधक है, जो प्रश्न करता है, जिज्ञासा करता है, और समर्पण करता है। ये गुण उसे वह पात्रता प्रदान करते हैं कि भगवान स्वयं उसे परम ज्ञान और विज्ञान प्रदान करें। जब कोई व्यक्ति अपने भीतर के अहंकार, ईर्ष्या, संशय और स्वार्थ को त्याग देता है, तभी वह 'अनसूय' बनता है-और वही स्थिति उस अंतिम रहस्य की पात्रता बनाती है, जो स्वयं भगवान प्रदान करने वाले हैं। महंत स्वामी महाराज बताते हैं कि यहां गीता का यह सखा-संवाद इस उपदेश को अधिक पारदर्शी, सहज और प्रभावकारी बनाता है। इसमें गहनतम जीवन रहस्य आलोकित हुए हैं। अर्जुन के साथ कृष्ण का संवाद केवल युद्ध भूमि पर दिया गया उपदेश नहीं है, बल्कि यह जीवात्मा और परमात्मा के मध्य हुआ मित्रता का ऐसा संवाद है जो युगों से मानवता को प्रेरणा दे रहा है।

रीडर्स मेल

सही मायने में 'आपातकाल'

क्या असल 'आपातकाल' अब लगा है, या 1975 वाला सही मायने में 'आपातकाल' था? क्योंकि जिस तरह की घटनाएं घट रही हैं, वैसा तो 1975 में भी देखने को नहीं मिला था। कहने को देश में न्याय व्यवस्था है। फिर भी आप चार-पांच वर्षों से उमर खालिद जैसे एक्टिविस्ट को बिना मुकदमा जेल में रखे हुए हैं। क्या यही सच्ची आजादी एवं सबसे बड़ा लोकतंत्र है? एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसी संस्थाओं तथा कई विदेशी पत्रकारों को भारत छोड़ने को मजबूर कर दिया गया। 'एक्स' के मुताबिक, भारत सरकार ने एक घंटे के अंदर 2355 अकाउंट्स ब्लॉक करने या बंद करने का आदेश दिया है। एक्स ने भारत सरकार पर प्रेस सेंसरशिप यानी मीडिया की आवाज बंद करने का आरोप लगाया है। क्या हमें यह मान लेना चाहिए कि आहिस्ता-आहिस्ता देश में 'एकतंत्रवाद' एवं 'तानाशाही' के बीज बोए जा रहे हैं? क्या अब देश में तमाम लोकतांत्रिक संस्थाओं का गला घोंट दिया जाएगा?

जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर

जल क्षेत्रों में हादसों से बचें

हाल की मूसलाधार बारिश के चलते अधिकांश जल स्रोत तालाब, झरने, प्रपात जल से लबालब हो चुके हैं। प्रकृति की इस भीगी-भीगी रंगत ने इन स्थलों को और भी मनोहारी बना दिया है, जिससे पर्यटक बड़ी संख्या में इन जल क्षेत्रों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। हरियाली से घिरे जल प्रपातों और कलकल बहते झरनों की छटा देखते ही बनती है परंतु इस सौंदर्य के बीच खतरे की आशंका भी बनी रहती है। खासकर बच्चे और किशोर अक्सर नहाने या मस्ती के दौरान असावधानीवश गहरे पानी में चले जाते हैं, जिससे दुर्घटनाएं हो सकती हैं। आवश्यक है कि पर्यटन स्थलों पर पर्याप्त सुरक्षा उपाय किए जाएं। स्थानीय प्रशासन तथा पर्यटक, दोनों की ओर से सतर्कता बरती जाए। यदि आनंद के साथ-साथ सावधानी भी बरती जाए तो यह बरसाती सौंदर्य जीवन भर की स्मृति बन सकता है न कि किसी हादसे की टीस। पालक भी बच्चों की मटरगश्ती पर निगाह बनाए रखें तो बेहतर होगा।

अमृतलाल मारू 'रवि', इंदौर

भारत की कूटनीतिक जीत

ब्राजील में ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में पहलगाम आतंकी हमले की गूंज भारत की कूटनीतिक जीत है। भारत हर अंतरराष्ट्रीय मंच पर आतंकवाद का मुद्दा उठाता रहा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा है कि आतंकवाद मानवता का शत्रु है। क्वाड सम्मेलन में भी पहलगाम आतंकी हमले के दोषियों को दंडित करने की मांग पर सहमति बनी थी। सम्मेलन में ईरान पर हमले एवं डब्ल्यूटीओ के खिलाफ जाकर व्यापार शुल्क बढ़ाने का विरोध किया गया। अमेरिका ब्रिक्स के इस कदम से नाराज होकर ब्रिक्स देशों पर और अधिक व्यापार शुल्क लगाने की धमकी दे रहा है। अमेरिका विश्व की सबसे बड़ी सैन्य-आर्थिक शक्ति है, तो भी उसे विश्व समुदाय की भावनाओं की कद्र करनी चाहिए अन्यथा आने वाले समय में अमेरिका के लिए यह आत्मघाती कदम होगा। अगले वर्ष भारत की अध्यक्षता में ब्रिक्स सम्मेलन आयोजित किया जाएगा जो मानव कल्याण की दिशा में अपना महती योगदान देगा।

ई हिमांशु शेखर, गयाजी

letter.editorsahara@gmail.com

हमें गर्व है हम भारतीय हैं

राष्ट्रीय सहारा
वर्ष-34, अंक 322
सहारा इण्डिया मास कम्युनिकेशन के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक जिया काज़ी द्वारा सहारा इंडिया मास कम्युनिकेशन प्रेस, सी-2,3, 4 सेक्टर-11, नोएडा में मुद्रित तथा 1209-1210, बाराखंबा लेन, नवरंग हाउस, 21 के.जी. मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित। । स्थानीय संपादक - रत्नेश मिश्र* ।
दूरभाष - दिल्ली कार्यालय - 011-23352369, 011-23352372, दूरभाष - नोएडा प्रेस 0120-2444755, 2444756 फैक्स - 2550750
आर.एन.आई. सं. 53469/91, पंजीकरण संख्या UP/BR /GZB- 38/2024-2026
*इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन तथा कानूनी मामलों के लिए उत्तरदायी

हड़ताल और बंद

बुधवार अपने देश में अनेक जगहों पर कुछ सेवाओं के प्रभावित होने का दिन रहा। कोई दोराय नहीं कि पिछले वर्षों में देश में बंद और हड़ताल की संख्या घटी है, क्योंकि संगठित क्षेत्र में तुलनात्मक रूप से स्थितियां सुधरी हैं। वेतन आयोगों का सतत लाभ केंद्रीय और अन्य सरकारी कर्मचारियों को मिलता रहा है। केंद्रीय श्रम संगठनों की अगर बात करें, तो पिछले साल फरवरी के बाद पहली बार हड़ताल देखी गई। विशेष रूप से बैंकिंग, बीमा, डाक और कोयला खनन क्षेत्र में ज्यादा असर दिखा है। पूरे देश में तो न सही, पर जहां-जहां केंद्रीय कर्मचारी संगठन मजबूत हैं, वहां काम रुके या प्रभावित हुए। कर्मचारी संगठनों की पहली शिकायत यही है कि कुछ ऐसे फैसले हो रहे हैं, जो श्रम बल के हितों के विरुद्ध हैं। वैसे यहां यह सवाल हो सकता है कि केंद्रीय कर्मचारियों को सभी श्रमिकों की चिंता है या केवल अपनी? वार्षिक श्रमिक सम्मेलन आयोजित करने की मांग भी जोर-शोर से की गई। श्रमिक संगठनों ने आरोप लगाया है कि आर्थिक नीतियां मजदूरों को नुकसान पहुंचा रही हैं। बेरोजगारी, महंगाई बढ़ने की शिकायत करते हुए श्रम-मूल्यों में गिरावट रोकने के लिए भी गुहार लगाई गई है।

वैसे, इस हड़ताल में सारे श्रमिक संगठन शामिल नहीं थे। वाम या समाजवादी विचार के संगठन ही हड़ताल पर गए। पिछले कुछ दशकों से भारत में श्रमिक संगठनों में एकता का अभाव देखा जा रहा है।

संसद सत्र भी शुरू होने वाला है और बिहार विधानसभा के लिए चुनाव भी होने हैं। अतः ऐसे मौकों पर लोग और मजदूर दशकों से अपनी बात रखते आए हैं।

हालांकि, सोचने वाली बात है कि राष्ट्रव्यापी हड़ताल की बात क्यों आई? आमतौर पर देखा गया है कि संसद सत्र या चुनाव से पहले इस तरह की हड़तालें होती हैं। अभी दोनों ही स्थितियां हैं, संसद सत्र भी शुरू होने वाला है और बिहार विधानसभा के लिए चुनाव भी होने हैं। अतः ऐसे मौकों पर मजदूर दशकों से अपनी बात रखते रहे हैं। इसे सकारात्मक रूप में ही लेना चाहिए, हालांकि यह जरूर कहना चाहिए कि मजदूरों के हड़ताल पर जाने की नौबत नहीं आनी चाहिए। केंद्रीय कर्मचारियों की बात करें, तो देश भर में महज 55 लाख उनकी संख्या है, जबकि 65 लाख के करीब पेंशनभोगी हैं। दोनों मिलाकर सवा करोड़ भी नहीं हैं। अतः हड़ताल का कहीं भी व्यापक असर न होना चकित नहीं करता। वैसे भी, तेजी से विकसित होते देश में हड़तालों की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए। सरकारों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कहीं भी हड़ताल की जरूरत न महसूस हो, ताकि कभी भी काम न रुके। ध्यान रखने की बात है कि इसी वर्ष जनवरी में आठवें वेतन आयोग के गठन की घोषणा हुई है। कर्मचारियों के वेतन में दो से तीन गुना वृद्धि हो सकती है। वास्तव में, चिंता संगठित क्षेत्र से ज्यादा असंगठित क्षेत्र की होनी चाहिए।

बहरहाल, हड़ताल के अलावा बिहार बंद भी चर्चा का विषय है। आगामी चुनाव की वजह से भी बिहार की राजनीति गर्माने लगी है। चुनाव आयोग वहां मतदाता सूची का पुनरीक्षण कर रहा है और विपक्षी दल इसका मुखर विरोध कर रहे हैं। विपक्षी दलों को चुनाव आयोग की यह कवायद मंजूर नहीं है। बिहार बंद के चलते अनेक जगह ट्रेन और सड़क यातायात प्रभावित हुआ है। विपक्षी नेताओं ने पटना में रैली निकाली है। इससे भी खास बात यह है कि इस मामले में सुप्रीम कोर्ट सुनवाई के लिए सहमत हो गया है। इस पर जल्द फैसला आने की उम्मीद है। अतः सियासी बंद के बजाय विरोध के दूसरे तरीके आजमाए जा सकते हैं। वैसे पहले की तुलना में बंद की राजनीति भी कम हुई है और यह देश के लिए सुखद संकेत है।

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 10 जुलाई, 1950

विस्थापितों की समस्या

केन्द्रीय सरकार के एक प्रवक्ता ने पश्चिमी पाकिस्तान से आए शहरी विस्थापितों के पुनर्वास का सिंहावलोकन करते हुए बताया कि करीब 20 लाख व्यक्ति निष्क्रांत मकानों, केन्द्रीय तथा राज्य सरकार द्वारा निर्मित घरों व झोंपड़ों तथा बैरकों में रह रहे हैं। इनमें से 14 लाख से अधिक व्यक्ति निष्क्रांत घरों में शरण लिये हुए हैं तथा शेष दूसरे स्थानों में। अभी जो 22 हजार मकान तथा झोंपड़े तैयार हो रहे हैं, उनमें करीब सवा लाख व्यक्ति और आ सकेंगे। प्रवक्ता ने यह भी बताया कि विस्थापितों के लिए निवास-स्थानों के निर्माण कार्य की गति को तीव्रता प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को आवश्यक सामान दे रही है। अभी तक वह 76 हजार टन सीमेंट तथा 47 हजार टन इस्पात दे चुकी है। इसके अतिरिक्त उसने लोहे के बहुत से नल तथा चादरें भी दी हैं। इस सब में भारत सरकार ने करीब चार करोड़ रु. खर्च किये हैं।

इन आंकड़ों पर विचार करते समय जब हम यह देखते हैं कि 20 लाख व्यक्तियों की यह संख्या पश्चिमी पाकिस्तान के कुल शहरी शरणार्थियों की संख्या की 80 प्रतिशत है, तो हमें यही कहना पड़ता है कि जिन लोगों का एकमात्र कार्य सरकार को खरी-खोटी सुनाना है और जो लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए विस्थापितों में निरन्तर असंतोष की ज्वाला उभाड़ते रहते हैं, वे शरणार्थियों को गुमराह करने के सिवा उनकी कोई सेवा नहीं करते। हम यह नहीं भूलते कि शेष 20 प्रतिशत पीड़ित भाइयों के लिए भी किसी न किसी प्रकार का प्रबंध अभी तक हो जाना चाहिए था। आखिर वे तथा उनके बाल-बच्चे प्रखर धूप, मूसलाधार वर्षा तथा कड़ाके की सरदी में पेड़-पौधों की भांति खुले आकाश के नीचे मौन खड़े नहीं रह सकते। हम यह भी नहीं भूलते कि जिन मकानों में विस्थापित व्यक्ति रह रहे हैं, उनमें से सभी स्वच्छता-सफाई तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुकूल नहीं तथा राजधानी में विदेशी साज-सामान से उनके लिए जो झोंपड़े बनाये गये, वे अभी से यह दर्शाने लगे हैं कि वे अधिक दिन न टिक सकेंगे। लेकिन इन सब अभाव व त्रुटियों के बावजूद सरकार पर यह दोषारोपण नहीं किया जा सकता कि विस्थापितों के प्रति वह उदासीन हो गई है। राजधानी में ही शरणार्थी समस्या पर विचार करें तो दिल्ली का कार्य ऐसा नहीं जिसे नगण्य कहा जा सके।

टैरिफ से दुनिया में तनाव बढ़ाते ट्रंप

हर्ष वी पंत | वाइस प्रेसिडेंट, ओआरएफ

डोनाल्ड ट्रंप टैरिफ को लेकर अपने बयान बार-बार बदलते रहे हैं। वह कभी नए शुल्क का एलान करते हैं, तो अगले ही दिन उसे टाल देने की बात भी कहने लगते हैं।

भारत के साथ संभावित व्यापार समझौते की खबरों के बीच अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने फिर से टैरिफ (सीमा शुल्क) बढ़ाने की धमकी दी है। स्टील और एल्युमीनियम के बाद उन्होंने तांबे पर 50 फीसदी, साथ ही अगले साल से आयातित दवाओं पर 200 फीसदी तक शुल्क-वृद्धि की चेतावनी दी है।

बेशक, ऐसे बयानों पर अभी स्पष्टता आनी शेष है, लेकिन सीमा शुल्क में यदि इस तरह की बढ़ोतरी होती है, तो भारत पर भी इसका कुछ हद तक असर पड़ सकता है, खासकर दवा उद्योग पर। दरअसल, भारत का सबसे बड़ा दवा बाजार अमेरिका ही है। वित्त वर्ष 2025 में उसने 9.8 अरब डॉलर की दवाइयां मंगवाई थीं, जो पिछले साल के मुकाबले 21 फीसदी ज्यादा थी। भारत जितनी दवाइयां दूसरे देशों को बेचता है, उसका 40 फीसदी हिस्सा अमेरिकी बाजार को जाता है। इनमें भी जेनेरिक दवाइयों की मात्रा काफी ज्यादा 45 प्रतिशत तक होती है। ऐसे में, सीमा शुल्क बढ़ाने से अमेरिकी बाजार में भारतीय दवाइयां महंगी हो सकती हैं, जिससे उनकी मांग भी प्रभावित होगी।

रही बात तांबे की, तो साल 2024-25 में भारत ने वैश्विक स्तर पर दो अरब डॉलर मूल्य का तांबा और तांबे से बने उत्पादों का निर्यात किया था, जिनमें से 36 करोड़ डॉलर मूल्य का, यानी 17 फीसदी निर्यात अमेरिकी बाजारों को किया गया था। आंकड़ों की मानें, तो तांबा निर्यात के लिहाज से अमेरिका भारत का तीसरा सबसे बड़ा बाजार है। हमसे ज्यादा तांबा सऊदी अरब (26 प्रतिशत) और चीन (18 प्रतिशत) अमेरिका भेजते हैं।

मगर अच्छी बात यह है कि तांबे की गिनती काफी महत्वपूर्ण खनिजों में होती है और इसका ऊर्जा, विनिर्माण व बुनियादी ढांचे सहित तमाम क्षेत्रों में व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता है। नए शुल्क के बाद यदि अमेरिकी बाजार में इसकी मांग घटती भी है, तो घरेलू उद्योग से उसकी भरपायी की जा सकेगी।

लिहाजा, ट्रंप यदि अपनी धमकी को अमल में लाते हैं, तब भी हमें कुछ हद तक ही परेशानी होगी। मगर मूल सवाल तो यह है कि क्या वह ऐसा करेंगे?

दरअसल, ट्रंप अब तक टैरिफ को लेकर अपने बयान बार-बार बदलते रहे हैं। वह कभी नई टैरिफ का एलान करते हैं, तो अगले ही दिन उसे टाल देने की बात भी कहने लगते हैं। इससे लगता है कि वह दो कदम आगे बढ़ते हैं और एक कदम पीछे हट जाते हैं। उनकी उलझन वाजिब भी दिखती है। असल में, उन्होंने पद संभालने के साथ ही सख्त टैरिफ नीति लाने का एलान किया था। उनका मानना था कि ऐसा कहने से तमाम देश अमेरिका के साथ नया समझौता करने को बाध्य होंगे और वाशिंगटन को अपने व्यापार-घाटा से पार पाने में मदद मिलेगी। उस वक्त उन्होंने 90 दिनों में 90 समझौते करने की उम्मीद जताई थी।

मगर ऐसा हो नहीं सका। अब तक बमुश्किल दो-तीन समझौते ही वह कर सके हैं, वे भी पूरी तरह से लागू नहीं हो सके हैं। मसलन, ब्रिटेन व वियतनाम के साथ उन्होंने संधि का एलान किया, जबकि चीन के साथ सीमित प्रावधानों पर सहमति बन सकी है। जाहिर है, ट्रंप अपनी नीतियों पर मनमर्जी आगे नहीं बढ़ सके हैं। उनकी यह सोच साकार होती नजर नहीं आ रही कि सख्त टैरिफ नीति के जवाब में अन्य देश अमेरिका के आगे झुकने को मजबूर होंगे। अब तो उनके ट्रेजरी सेक्रेटरी स्कॉट बेसेंट ने भी दावा किया है कि ट्रंप का ध्यान मूलतः उन्हीं 18 देशों पर है, जो अमेरिका के 95 फीसदी व्यापार घाटा के कारक रहे हैं। जाहिर है, ट्रंप अपने वायदों से पीछे हटने को मजबूर हो रहे हैं। बाजार भी उनकी इस उलझन से गाफिल नहीं है।

जिन देशों के साथ अमेरिका का व्यापार घाटा है, उनमें भारत भी एक अहम देश है। नई दिल्ली के साथ जल्द ही समझौते होने की उम्मीद है, लेकिन यह सीमित ही होगा, समग्र नहीं। मुमकिन है कि इसमें भारत की मंशा के अनुरूप कृषि और डेयरी उद्योग जैसे बड़े क्षेत्र शामिल नहीं किए जाएंगे। यह हमारे लिए आर्थिक रूप से भी मुफीद नहीं है और इससे देश में राजनीतिक भूचाल आ सकता है। हां, कपड़ा व फार्मास्यूटिकल्स जैसे मुद्दों पर भारत पीछे हट सकता है, जो आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि किसी भी समझौते में दोनों पक्षों के हितों को तवज्जो मिलती है। यही वजह है कि संभावित समझौते को 'मिनी ट्रेड डील' कहा जा रहा है।

बहरहाल, हमें इस तरह के समझौते पर जल्द से जल्द पहुंच जाना चाहिए। अगर अमेरिका के साथ बात नहीं बनती है, तो हमारी चिंताएं बढ़ सकती हैं। भारत नहीं चाहेगा कि हमारे दूसरे सबसे बड़े बाजार चीन पर हमारी निर्भरता और बढ़े। ऐसा इसलिए, क्योंकि चीन के साथ हमारे कूटनीतिक संबंध बहुत अच्छे नहीं रहे हैं। व्यापार में उस पर निर्भरता हमारे हितों के प्रतिकूल साबित हुई है। मगर दिक्कत यह है कि भारतीय विनिर्माण क्षेत्र को कच्चा माल चीन से ही मिलता है। यहां तक कि 'मेक इन इंडिया' को भी हम तभी आगे बढ़ा सकते हैं, जब संसाधनों की पूर्ति चीन से हो। गलवान घटना के बाद हमने बहुत कोशिश की, लेकिन अपने इस पड़ोसी देश पर से अपनी निर्भरता को कम नहीं कर सके हैं। ऐसे में, अमेरिका के साथ व्यापार समझौता में यदि अड़ंगा लगता है, तो भारत की उलझन बढ़ सकती है।

एक तर्क यह भी दिया जाता है कि अमेरिका निर्यात किए जाने वाले उत्पादों को हमें अन्य देशों में भेजना चाहिए। कागज पर तो यह काम काफी सरल दिखता है, लेकिन व्यवहार में इसे अमल में लाना काफी मुश्किल है। अमेरिका इतना बड़ा बाजार है कि उसकी तुरंत भरपायी किसी दूसरे देश से नहीं की जा सकती। ऐसे में, हमारे घरेलू बाजार पर भी इसका नकारात्मक असर पड़ेगा। अभी वैश्विक अर्थव्यवस्था भी चरमराई हुई है, लिहाजा उथल-पुथल जैसी स्थिति में अमेरिका जैसे भरोसेमंद बाजार को छोड़ तत्काल किसी अन्य देश का रुख करना अच्छी आर्थिक नीति नहीं मानी जाएगी, क्योंकि दूसरे बाजार भी अभी सुस्त पड़े हुए हैं। हालांकि, ऐसा नहीं है कि अमेरिका को हमारी जरूरत नहीं है। व्यापार समझौते में देरी की वजह ही यही है कि वह अपने हितों को तवज्जो देना चाहता है, जिस पर हमारी हुकूमत फिलहाल तैयार नहीं दिखती।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

लुटियंस दिल्ली में सरकारी बंगले का मोह नहीं जाता

विवेक शुक्ला | वरिष्ठ पत्रकार

एडविन लुटियंस जब 10 राजाजी मार्ग (पहले हेस्टिंग्स रोड) के बंगले में रहते हुए अपने साथियों के साथ नई दिल्ली की खासमखास इमारतों और बंगलों को डिजाइन कर रहे होंगे, तब उन्होंने ख्वाबों में भी नहीं सोचा होगा कि आने वाले समय में इनमें रहने वाला शख्स यहां बने रहने के लिए तमाम वजहें बताएगा। ताजा मामले में भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ अपने 5 कृष्ण मेनन मार्ग के बंगले को न छोड़ने के कारण गिनवा रहे थे। वह समय-सीमा खत्म होने के बाद भी उसमें जमे रहे।

इस लिहाज से बाबा साहब आंबेडकर पहले नेता रहे, जिन्होंने मंत्री पद छोड़ने के अगले ही दिन लुटियंस दिल्ली का अपना सरकारी बंगला खाली कर दिया था। बाबा साहब ने 27 सितंबर, 1951 को नेहरू मंत्रिमंडल से अप्रत्याशित रूप से त्यागपत्र दे दिया था। दोनों में हिंदू कोड बिल को लेकर गहरे मतभेद उभर आए थे। वह दिन में करीब चार बजे अपने 22, पृथ्वीराज रोड स्थित आवास लौटे। तब उन्होंने अपने साथी नानक चंद रत्तू को पास बुलाकर कहा कि वह चाहते हैं कि सरकारी आवास अगले दिन तक खाली कर दिया जाए। इस बीच, करोल बाग क्षेत्र से बाबा साहब के सैकड़ों समर्थक 22, पृथ्वीराज रोड पहुंचने लगे। करोल बाग से आने वालों की चाहत थी कि बाबा साहब करोल बाग शिफ्ट कर जाएं। पर अपने समर्थकों से सोच-विचार करने के बाद अगले ही दिन वह 26, अलीपुर रोड (अब राजपुर रोड) शिफ्ट कर गए और अपने जीवन के अंत तक उसी बंगले में रहे। काश! दूसरे नेता, अफसर और बड़े सरकारी पदों को संभाल रहे खास लोग उनसे कुछ सीख ले पाते।

बाबा साहब आंबेडकर पहले नेता रहे, जिन्होंने मंत्री पद छोड़ने के अगले ही दिन लुटियंस दिल्ली का सरकारी बंगला खाली कर दिया था।

दरअसल, लुटियंस दिल्ली के बंगले को छोड़कर किसी अन्य जगह पर जाकर रहना आसान नहीं होता। बेहद खूबसूरत और सुविधा-संपन्न है लुटियंस जोन। गर्मियों में जब सूरज देवता दिल्ली में आग उगलते हैं, तब भी यहां के 26 वर्ग किलोमीटर में फैले हरे-भरे क्षेत्र में मीठी बयार ही बहती है। इधर की हर सड़क के दोनों तरफ लगे घने दरख्तों की भारी-भरकम टहनियां सड़क के एक बड़े भाग को अपनी आगोश में लिए रहती हैं। इनकी मीठी बयार गर्मी में भी खुशनुमा एहसास देती हैं। लुटियंस दिल्ली में मुख्य रूप से इमली, अमलतास, जामुन, बरगद वगैरह के पेड़ लगे हैं। पर शायद सबसे ज्यादा जामुन है। सफदरजंग रोड, सुनहरी बाग, राजाजी मार्ग, कुशक रोड, त्यागराज मार्ग, मोतीलाल नेहरू मार्ग में जामुन हैं। अकबर रोड और तीन मूर्ति मार्ग पर इमली के पेड़ हैं। अकबर रोड के पीछे कुछ अमलतास भी हैं। पृथ्वीराज रोड, औरंगजेब रोड, तीस जनवरी मार्ग, कृष्ण मेनन मार्ग पर नीम हैं, तो बाबा खड़क सिंह मार्ग, तिलक मार्ग, फिरोजशाह रोड, तीन मूर्ति मार्ग इमली के पेड़ों से लबरेज है। यहां बड़े-बड़े बंगलों, हरी-भरी सड़कों के बीच देश के सबसे शक्तिशाली नेता, सांसद, मंत्री, सरकारी बाबू और जज रहते हैं।

लुटियंस दिल्ली का इतिहास और उसकी बनावट इसे खास बनाती है। यह पूरा इलाका ब्रिटिश काल में बनाया गया था। मशहूर आर्किटेक्ट एडविन लुटियंस ने इसे रॉबर्ट टोर रसेल, वाल्टर जॉर्ज जैसे अपने साथियों के साथ मिलकर डिजाइन किया था। इसका ले-आउट इतना शानदार है कि आज भी यह दुनिया के सबसे खूबसूरत और सुनियोजित इलाकों में गिना जाता है। यहां की चौड़ी सड़कें, बड़े-बड़े बंगले और हरियाली देखकर कोई भी मंत्रमुग्ध हो जाए। लुटियंस दिल्ली में रहना स्टेटस सिंबल है।

यहां की सुविधाओं के क्या कहने? लुटियंस दिल्ली के बंगले सरकारी खर्च पर 'मेंटेन' किए जाते हैं। बिजली, पानी, बागवानी और सुरक्षा- सब कुछ सरकार की तरफ से होता है। इसीलिए, एक बार यहां रहने आए लोग आसानी से बंगला छोड़ने को तैयार नहीं होते। लुटियंस दिल्ली में देश के चोटी के उद्योगपतियों के भी आशियाने हैं। इनकी कीमत 300 करोड़ रुपये से कम नहीं होगी। इस इलाके में करीब 250 निजी बंगले भी हैं। ये पृथ्वीराज रोड, एपीजी अब्दुल कलाम रोड, तुगलक रोड, तुगलक लेन वगैरह में हैं। बहरहाल, कभी-कभी तो उन खासमखास लोगों से 'सहानुभूति' होती है, जिन्हें इधर रहने के बाद कहीं और जाना पड़ता है। सच में, बड़ी तकलीफ होती होगी अर्श से फर्श पर आते हुए।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

गुरु पूजन का पर्व

व्यास पूजा, अर्थात गुरु पूर्णिमा शिष्यों और साधकों के जीवन में एक दिव्य तिथि होती है। यह दिन हमें स्मरण कराता है कि क्या हमने सच्चे शिष्य होने का धर्म निभाया? क्या हमने अपने श्रीगुरु के वचनों का पालन किया, उनके ज्ञान को अपने जीवन में उतारा? यह पर्व आत्म-परीक्षण का अवसर देता है।

एक सच्चा साधक जानता है कि जीवन केवल भौतिक सुखों को इकट्ठा करने के लिए नहीं है। यह जीवन धर्म को समझने, उसे जीने और फिर धर्मपूर्वक अर्जित धन से संसार का संचालन करने के लिए मिला है। विवेक और वैराग्य के जागरण के लिए मिला है। गृहस्थ जीवन जीते हुए भी साधक सजग रह सकता है। विवाह करें, परिवार बनाएं, पर स्मरण रहे कि शरीर और उससे जुड़े सुख नश्वर हैं। इसलिए भोग में लिप्त होकर चेतना को गिरने न दें। विशेषकर गृहस्थ के लिए यह जागरूकता अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि वह रोज संसार, बाजार और भोगवाद से घिरा होता है। वहीं यदि साधना प्रबल हो, तो वही गृहस्थ उत्तम साधक बन जाता है।

एक शिष्य वही है, जो साधना करता है। चाहे वह कितना भी व्यस्त हो, उसके अंदर एक मस्ती, साधना की खुशबू, सुख बना रहता है। जो प्रातःकाल ध्यान करे और सायंकाल जप, वह अपने जीवन की दिशा को सार्थक करता है। जो कभी ध्यान, प्राणायाम और सिमरन न करे, ऐसा व्यक्ति गुरु-शिष्य परंपरा का अंग नहीं हो सकता। जब शिष्य ही न रहे, तो गुरु की उपस्थिति का क्या अर्थ?

संपूर्ण सृष्टि के प्रथम गुरु महादेव हैं। ज्ञान की यह परंपरा महादेव से चली और ऋषि वेदव्यास तक पहुंची। वेदव्यास ने वेदों को चार भागों में संहिताबद्ध किया, *ब्रह्मसूत्र* की रचना की, *श्रीमद्भगवद्गीता* का भाष्य किया और वेदांत के प्रति श्रद्धा जगाई। संपूर्ण भारत में भ्रमण कर उन्होंने ऋषियों व आचार्यों को तैयार किया और उन्हें निर्देश दिया कि अपने-अपने क्षेत्रों में ज्ञान की वह धारा फैलाएं। इसलिए गुरु पूर्णिमा, ऋषि वेदव्यास को समर्पित है। इस दिन हम उनको और समस्त ऋषियों-मुनियों, ऋषिकाओं, योगियों और योगिनियों को स्मरण करते हैं। हम उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और याचना करते हैं कि हम भी उनके पदचिह्नों पर चल सकें।

गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर हम सब अपने-अपने सद्गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और यह याचना करते हैं कि हम भी ऋषियों के पदचिह्नों पर चल सकें।

इस अवसर पर शिष्य प्रार्थना करते हैं कि हम शरीर और मन के भोगों में फंसकर इस दुर्लभ मानव जीवन को व्यर्थ न करें, बल्कि इसे साधना और जागृति के लिए समर्पित कर सकें। अपने सद्गुरु से यह आशीर्वाद मांगने का दिन है कि हमारे साधना-पथ में कोई विघ्न न आए, कोई भ्रम या विचलन न हो। यदि इस दिन अधिक ध्यान करें, मौन रहें, अपने भीतर की यात्रा करें, तो यह संभव है कि एक ही क्षण में कोई ऐसी कृपा घट जाए, जिससे साधक को समाधि का अनुभव हो जाए।

आनंदमूर्ति गुरुमां

आशुतोष राणा | अभिनेता

चिंता 'रॉकिंग चेयर' जैसी होती है, जो हमें हिलाती तो है, पर ले कहीं नहीं जाती। समस्या के बारे में सोचना 'चिंता' है और समाधान के बारे में विचारना 'चिंतन'। चिंता को स्वीकारे बिना हम चिंतन तक नहीं पहुंच सकते।

गुरु के बिना कहां मिलती सफलता

आदि शंकराचार्य के शब्दों में कहें, तो न गुरोरधिकं तत्त्वं, यानी गुरु से बढ़कर कोई सत्य नहीं। गुरु वह दीपक हैं, जो हमारे अंतर्मन के अंधेरे को मिटाकर आत्म-साक्षात्कार का पथ प्रशस्त करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार, 75 प्रतिशत लोग मानते हैं कि किसी गुरु का मार्गदर्शन उनकी सफलता और व्यक्तित्व-निर्माण में निर्णायक रहा। इससे एक बात तो साफ हो जाती है कि गुरु के बिना सफलता नहीं मिलती। यह पर्व आत्म-मंथन का एक अवसर है, जो हमें गुरु की शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारने और स्वयं को परखने की प्रेरणा देता है।

गुरु पूर्णिमा का पर्व पवित्रता और श्रद्धा का प्रतीक है। डिजिटल शिक्षा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इस दौर में भी गुरु का स्थान अपरिवर्तनीय है। जब विश्व तकनीकी प्रगति की ओर अग्रसर है, तब भी यह पर्व हमें स्मरण कराता है कि सच्चा ज्ञान वही है, जो मनुष्य को नैतिकता, करुणा और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाए। एक सर्वेक्षण के अनुसार, 65 प्रतिशत युवा मानते हैं कि उनके शिक्षक या मेंटर ने उनके करियर और जीवन को दिशा दी। डॉ एपीजे अब्दुल कलाम जैसे शिक्षकों ने तो लाखों नौजवानों को विज्ञान और नैतिकता का पाठ पढ़ाकर प्रेरित किया। जाहिर है, गुरु का आशीर्वाद वह अमूल्य शक्ति है, जो हर चुनौती से पार पाने का साहस देती है। यह पर्व हमें सिखाता है कि भौतिक सफलता से कहीं अधिक मूल्यवान वह आंतरिक शांति है, जो सद्गुरु की शिक्षाओं से हमें मिलती है। यह केवल एक त्योहार नहीं, बल्कि जीवन को अर्थ और प्रेरणा देने वाला आध्यात्मिक संदेश भी है।

गुरु पूर्णिमा वह पावन अवसर भी है, जो हमें अपने गुरुओं के प्रति हृदय की गहराई से कृतज्ञता व्यक्त करने और उनके दिखाए मार्ग पर अडिग रहने की प्रेरणा देता है। यह पर्व हमें उस शाश्वत सत्य से जोड़ता है कि गुरु के बिना जीवन अधूरा है- न ज्ञान, न गति, न सार्थकता। ऋग्वेद का एक सूत्र है, *आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः*, यह हमें विश्व भर से श्रेष्ठ विचार ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। गुरु पूर्णिमा यही संदेश देता है- ज्ञान की अनवरत खोज, अनुशासन का पालन और अपने गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा।

जब-जब हम अपने श्रीगुरु के चरणों में अपना सिर झुकाते हैं, तब-तब हम उस अनंत शक्ति को प्रणाम करते हैं, जो हमें अंधेरे से प्रकाश की ओर ले जाती है। यह पर्व हमें विश्वास दिलाता है कि गुरु का आलोक वह अमर ज्योति है, जो न केवल व्यक्तिगत जीवन, बल्कि समस्त विश्व को आलोकित करती है। इसे लिए गुरुओं का हर सूरत में सम्मान कीजिए।

आरके जैन 'अरिजीत', शिक्षाविद

अनुलोम-विलोम

गुरु पूर्णिमा

अपनी मेहनत से सफल होते शिष्य

कोई भी सफलता पाने के लिए गुरु का मार्गदर्शन निस्संदेह आवश्यक होता है, लेकिन यह बात भी उतनी ही सच है कि जब तक शिष्य खुद प्रयत्न नहीं करता, तब तक सफलता उसे नहीं मिल सकती, यानी शिष्य के स्वयं के प्रयासों और उसकी अपनी सक्रियता से ही सफलता उसके कदम चूम पाती है। इसलिए शिष्य की प्रगति के लिए उसे भी शाबाशी मिलनी चाहिए, न कि सिर्फ गुरुओं को पूरा श्रेय दे दिया जाए। इस लिहाज से यह भी कह सकते हैं कि सफलता एक संयुक्त प्रयास है, जिसमें गुरु का मार्गदर्शन व शिष्य की सक्रिय भागीदारी, दोनों की बराबर जरूरत होती है। मगर भारतीय सनातन परंपरा में गुरु को ही महत्व दिया गया है और उनको ही यह दिन समर्पित किया गया है। फिर, आजकल गुरु कैसे-कैसे हो गए हैं, यह कोई छिपा रहस्य नहीं है। अखबारों की सुर्खियां भी बनती हैं कि किस तरह किसी गुरु ने अपने विद्यार्थियों का शोषण किया। इस सामाजिक विकृति के पनपने की एक बड़ी वजह शिक्षकों की सोच में आया बदलाव है। अब गुरु पूरी तरह से पेशेवर हो गए हैं।

पहले के गुरु बेशक अपने शिष्यों के प्रति आग्रही होते थे और उनके सुख-दुख का वे पूरा ख्याल रखते थे, लेकिन आज तो उनको बस पढ़ाने से मतलब होता है, शिष्य ने कितना सीखा या शिष्य क्यों नहीं सीख पा रहा, ऐसे सवालों से उलझने से वे बचते हैं। साफ है, गुरु तभी अपनी प्रतिष्ठा अर्जित कर सकेंगे, जब वे अपने शिष्यों को समग्र ज्ञान देंगे।

महिमा सिंह, टिप्पणीकार

'गुरु पूर्णिमा' शब्द सुनते ही मेरे दिमाग में सीधा यही ख्याल आता है कि यह 'दुष्ट गुरुओं' द्वारा अपने ज्ञान का व्यापार करने और लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए तय किया गया दिवस है। वैसे भी, यदि गुरु किसी खास दिन की महिमा बताए और उस खास दिन से अपना नाम जोड़े, तो वह दिन का नहीं, बल्कि अपना महत्व बता रहा है। यहां यह भी समझने वाली बात है कि गुरुओं से अधिक महत्व शिष्यों का है, क्योंकि गुरु तो कई मिल जाएंगे, लेकिन सच्चे शिष्य यदा-कदा ही मिलते हैं। अगर सच्चा शिष्य मिल जाए, तो वह दुर्लभ घटना मानी जाती है। अगर शिष्य सच्चा होगा, तो उसे यदि झूठा गुरु भी मिल जाए, तो वह उसके माध्यम से सत्य तक पहुंच जाएगा, लेकिन यदि किसी सच्चे गुरु को झूठा शिष्य मिल जाए, तो वह कुछ भी कर ले, अपने उस शिष्य को सत्य का ज्ञान नहीं करा सकते। इसलिए सदा सच्चे शिष्य की तलाश को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाएं। मैं तो कहता हूं, शिष्यों के लिए भी एक दिवस मनाएं।

शशांक, टिप्पणीकार

46.5 प्रतिशत लोग स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं भारत में, जबकि चीन में 68.4 प्रतिशत लोग और अमेरिका में वहां की जनसंख्या की तुलना में लगभग 81.6 प्रतिशत लोग स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं।

ई-वोटिंग

भारतीय लोकतंत्र का डिजिटल भविष्य

बिहार ने हाल ही में भारतीय लोकतंत्र में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर स्थापित किया, जब वह देश का पहला ऐसा राज्य बना जिसने स्थानीय निकाय चुनावों में ई-वोटिंग प्रणाली को प्रयोगात्मक रूप में लागू किया। यह पहल न केवल तकनीकी नवाचार का संकेत है, बल्कि यह मतदाता सुविधा, समावेशन और चुनावी सहभागिता की दिशा में एक साहसिक कदम भी है। यह शुरुआत भले ही सीमित दायरे में हुई हो, लेकिन इसका प्रभाव व्यापक होगा और आने वाले समय में संभवतः यह भारत की मतदान संस्कृति का चेहरा बन सकता है

रोहित प्रियदर्शी
लोक नीति विश्लेषक

प्रतीकात्मक

भारत के चुनावी इतिहास में पहली बार बिहार ने 28 जून 2025 को स्थानीय निकाय चुनावों में मोबाइल आधारित ई-वोटिंग की शुरुआत करते हुए तकनीक के माध्यम से लोकतंत्र को आमजन के और करीब लाने का प्रयास किया है। बिहार की यह पहल न केवल वोटिंग प्रक्रिया को सरल बनाती है, बल्कि यह संकेत देती है कि भारत का चुनावी तंत्र तकनीक के साथ चलने के लिए तैयार है, बशर्ते यह पारदर्शिता, सुरक्षा और विश्वास की कसौटी पर खरा उतरे। भारत जैसे विशाल लोकतंत्र के लिए तकनीक का सहारा लेना अब विकल्प नहीं, आवश्यकता बन चुका है। ई-वोटिंग एक ऐसी शुरुआत है जो न केवल मतदाता की सुविधा को केंद्र में रखती है, बल्कि चुनावी प्रक्रिया को पारदर्शी, सुलभ और सुरक्षित भी बनाती है। यह भविष्य की ओर बढ़ाया गया साहसिक कदम है।

बिहार माडल : बिहार ने ई-वोटिंग की शुरुआत कर यह सिद्ध कर दिया है कि इच्छाशक्ति हो तो व्यवस्था बदल सकती है। अब यह बाकी राज्यों की जिम्मेदारी है कि वे इसे देखें-समझें और अपनाएं। इसमें कोई दो राय नहीं कि पायलट प्रोजेक्ट की सीमाएं होंगी, पर संदेश स्पष्ट है कि वोटिंग अब बदलाव के दौर में है। यदि इसे सही तरीके से अपनाया जाए, तो यह देशभर में मतदान प्रतिशत और भागीदारी में बड़ा फर्क आ सकता है। वस्तुतः यह बदलाव केवल सुविधा का नहीं, मानसिकता का है। वोटिंग अब स्थान आधारित कर्तव्य से डिजिटल अधिकार बन रहा है। युवाओं के लिए सब कुछ मोबाइल पर है तो वोटिंग क्यों नहीं? वे लंबी कतारों से दूर भागते हैं, लेकिन तकनीक के सबसे बड़े उपयोगकर्ता हैं। ई-वोटिंग उन्हें लोकतंत्र से जोड़ने का माध्यम बन सकती है। ई-वोटिंग न केवल युवा पीढ़ी को आकर्षित करेगा, बल्कि अब तक जो नागरिक शारीरिक बाधाओं या दूरी की वजह से मतदान से वंचित थे, उनके लिए ई-वोटिंग आशा की किरण है।

सुविधाजनक प्रक्रिया : मोबाइल आधारित ई-वोटिंग में न तो कोई बूथ होता है, न ही लंबी कतारें, न ही कोई ऐसा मौका जिसमें असामाजिक तत्व मतदान प्रक्रिया को बाधित कर सकें। हर व्यक्ति अपने मोबाइल से, अपने स्थान से सुरक्षित तरीके से वोट डाल सकता है। इससे पारदर्शिता बढ़ने के साथ ही मतदाता निर्भय होकर मतदान कर सकेंगे। किसी प्रकार का फर्जीवाड़ा रोकने के लिए बायोमीट्रिक व चेहरा पहचान तकनीक जैसी सुरक्षा व्यवस्थाएं इसे अधिक विश्वसनीय बनाती हैं। हालांकि यह कह देना जल्दबाजी है कि ई-वोटिंग हर समस्या का अंतिम इलाज है। तकनीक के साथ भी अपने जोखिम हैं- हैकिंग और डाटा लीक जैसे खतरे। लेकिन साइबर सुरक्षा उपायों और कड़े सत्यापन तंत्र के साथ ई-वोटिंग चुनावी पारदर्शिता की दिशा में निर्णायक साबित हो सकती है।

ई-वोटिंग की सफलता केवल तकनीक पर नहीं, बल्कि उस तकनीक को आम नागरिक की समझ, पहुंच और विश्वास के दायरे में लाने पर निर्भर करेगी। बिहार में जो शुरूआत हुई है, वह भारत के लोकतंत्र को डिजिटल युग में ले जाने का पहला कदम है। अब जरूरत है इसे धैर्य, शोध और भागीदारी के साथ आगे बढ़ाने की। देशभर में इसे एक झटके में लागू करना व्यावहारिक नहीं होगा। पहले राज्य स्तर पर और उसके बाद राष्ट्रीय स्तर तक इसे ले जाना चाहिए। साथ ही डाटा सुरक्षा, सर्वर सुरक्षा और एप प्रमाणन को सुनिश्चित करने के लिए विशेषज्ञों की एक स्थायी समिति बनाई जानी चाहिए। चुनाव आयोग को इसके लिए मजबूत तकनीकी इकोसिस्टम खड़ा करना होगा।

चुनौतियां : हमारे देश में करोड़ों लोग मोबाइल और इंटरनेट का सीमित उपयोग करते हैं। खासकर बुजुर्ग, ग्रामीण महिलाएं और अशिक्षित वर्ग के लिए मोबाइल एप से वोट डालना जटिल कार्य है। यह सच है कि तकनीक भविष्य है, लेकिन सभी को साथ लेकर चलना भी उतना ही जरूरी है। ई-वोटिंग को लागू करने से पहले हमें व्यापक स्तर पर डिजिटल साक्षरता अभियान चलाने होंगे, ताकि कोई भी मतदाता पीछे न छूटे।

ई-वोटिंग में सबसे बड़ा डर डाटा सुरक्षा का है। अगर मतदाता का चेहरा, आधार या वोटिंग जानकारी लीक हो जाए तो लोकतंत्र की नींव ही हिल सकती है। आज भी कई सरकारी वेबसाइटें साइबर हमलों की शिकार होती हैं, ऐसे में मोबाइल वोटिंग को पूरी तरह सुरक्षित कैसे बनाया जाए, यह बड़ा सवाल है। ई-वोटिंग की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वोट सही व्यक्ति द्वारा डाला गया है या नहीं। फेस रिकग्निशन, ओटीपी और बायोमीट्रिक जैसे उपाय फायदेमंद हैं, लेकिन भारत जैसे विविधता भरे देश में ये तकनीकें कितनी सटीक हैं? अगर एक भी फर्जी वोट सिस्टम में घुस जाए, तो पूरी प्रक्रिया सवालों के घेरे में आ जाती है। इसलिए ई-वोटिंग को लागू करने से पहले इसे कई स्तरों पर परीक्षण और प्रमाणीकरण से गुजारना जरूरी है। कहीं वोट हैक न हो जाए, कहीं पहचान दुरुपयोग न हो। यदि सही साइबर सुरक्षा प्रोटोकाल, फेस रिकग्निशन और ब्लाकचेन जैसी तकनीकें अपनाई जाएं, तो यह प्रक्रिया सुरक्षित बन सकती है।

मतदान प्रतिशत बढ़ाना बड़ी चुनौती है, खासकर शहरी वर्ग व प्रवासी मजदूरों में। मोबाइल एप से मतदान की सुविधा उन्हें लुभा सकती है जो समय की कमी या दूरी की वजह से वोट नहीं डाल पाते। बिहार में स्थानीय निकायों से इसकी शुरूआत हुई है, लेकिन क्या हम इस तकनीक को लोकसभा और विधानसभा जैसे बड़े चुनावों में लागू कर सकते हैं? जवाब है- हां, लेकिन सोच-समझकर और चरणबद्ध तरीके से। अगर पारदर्शिता, डाटा सुरक्षा और तकनीकी पहुंच सुनिश्चित की जाए, तो यह भारत की चुनावी व्यवस्था में एक क्रांतिकारी सुधार होगा।

चुनाव प्रक्रिया में पूर्ण पारदर्शिता एवं निष्पक्षता

अवधेश मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार

भारत जैसे विशाल और विविधताओं से भरे लोकतंत्र में मतदाता सूची की शुद्धता प्रशासनिक औपचारिकता के साथ ही लोकतांत्रिक वैधता की आधारशिला भी है। चुनाव आयोग द्वारा किया जाने वाला पुनरीक्षण अभियान प्रशासनिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, यह सामाजिक और राजनीतिक विमर्श के केंद्र में भी आ गया है। यह अभियान इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि बीते वर्षों में मतदाता सूची में अवैध प्रवासियों, मृत लोगों के नाम और डुप्लीकेट प्रविष्टियों की शिकायतें बढ़ती रही हैं। सीमावर्ती राज्य होने के कारण यहां घुसपैठ की आशंका भी अधिक है। बांग्लादेशी और रोहिंग्या जैसे अवैध प्रवासियों की उपस्थिति पर लंबे समय से चर्चा होती रही है, और यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या लोकतांत्रिक संस्थाएं इस खतरे की अनदेखी कर सकती हैं?

प्रशासनिक तौर पर इतने विशाल स्तर पर पुनरीक्षण करना निश्चित ही चुनौतीपूर्ण है। लगभग एक माह के भीतर करोड़ों दस्तावेजों का सत्यापन करना एक अत्यंत कठिन कार्य है। लेकिन चुनाव आयोग ने पारदर्शिता बनाए रखने हेतु बूथ स्तर पर घर-घर जाकर सत्यापन की व्यवस्था की है, जिससे निष्पक्षता और सहभागिता सुनिश्चित की जा सके। इस अभियान को लेकर विपक्षी दलों की तीव्र प्रतिक्रिया सामने आई है। राष्ट्रीय जनता दल, कांग्रेस और वाम दलों ने इसे 'वोटबंदी' और 'राजनीतिक भेदभाव' से प्रेरित बताया है। उनका आरोप है कि यह प्रक्रिया गरीब और हाशिये पर स्थित समुदायों के मतदाता अधिकारों पर चोट कर सकती है। हालांकि चुनाव आयोग ने स्पष्ट किया है कि यदि किसी व्यक्ति के पास दस्तावेज नहीं हैं, तो स्थानीय जांच के आधार पर उनका सत्यापन संभव है। यह प्रशासनिक लचीलापन इस बात का संकेत है कि आयोग नीतिगत दृढ़ता के साथ संवेदनशीलता भी बरत रहा है। वास्तविकता यह भी है कि कई क्षेत्रों में अवैध प्रवासियों के वोटर लिस्ट में शामिल होने की शिकायतें वर्षों से मिलती रही हैं। यह कानून के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि वास्तविक नागरिकों के अधिकारों का भी उल्लंघन है। ऐसे में अगर कुछ लोग दस्तावेज मांगने पर असहज हो रहे हैं, तो आत्ममंथन भी आवश्यक है कि क्या वे सूची में नियमों के विरुद्ध तो नहीं शामिल हुए?

मताधिकार लोकतंत्र का सबसे पवित्र अधिकार है, जिसे केवल भारतीय नागरिकों को ही प्राप्त होना चाहिए। इस अधिकार की रक्षा करना चुनाव आयोग का नैतिक और संवैधानिक कर्तव्य है। यदि लोकतंत्र में अवैध प्रविष्टियों की गुंजाइश बनी रहे, तो यह न केवल चुनावी प्रक्रिया की विश्वसनीयता को प्रभावित करता है, बल्कि सामाजिक न्याय की अवधारणा को भी कमजोर करता है। साथ ही, यह समझना आवश्यक है कि मतदाता सूची पुनरीक्षण अभियान एक एकांगी प्रक्रिया नहीं है। आयोग ने राजनीतिक दलों को अपने बूथ प्रतिनिधि नियुक्त करने का आह्वान भी किया है, ताकि जांच में पारदर्शिता और सहभागिता बनी रहे। यह कोई गुप्त या एकतरफा कार्रवाई नहीं, बल्कि सार्वजनिक भागीदारी की मिसाल है। बिहार में चल रहा विशेष सघन पुनरीक्षण अभियान भारतीय लोकतंत्र के आत्मा की रक्षा के लिए उठाया गया एक आवश्यक कदम है। लोकतंत्र में समावेशिता जितनी जरूरी है, उतनी ही जरूरी है वैधता। चुनाव आयोग को चाहिए कि वह इस संवेदनशील प्रक्रिया में संवाद, पारदर्शिता और संवेदनशीलता का समुचित संतुलन बनाए रखे। यह मतदाता सूची की शुद्धता सुनिश्चित करने की कवायद किसी भी राजनीतिक पूर्वाग्रह से प्रेरित नहीं, बल्कि संवैधानिक दायित्व का निर्वहन है। हम सबको चाहे वह नागरिक हों या राजनीतिक दल, इस पुनीत प्रयास में सहयोग करना चाहिए, ताकि भारत का लोकतंत्र और अधिक दृढ़, निष्पक्ष और प्रभावी बन सके।

खरी-खरी

हमारे कवि निठल्लेराम जी

प्रभुनाथ शुक्ल

हमारे मोहल्ले में कवि निठल्लेराम रहते हैं। सौभाग्य की बात हमारे लिए है या फिर उनके लिए, मैं कह नहीं सकता हूं, लेकिन वे हमारे अजीज पड़ोसी हैं। उन्हें अपच की बीमारी ने कुछ अधिक परेशान कर रखा है। दिन-रात का उन्हें ख्याल ही नहीं रहता है। जब जी में आता है गर्दभ स्वर में अपना कविता पाठ शुरू कर देते हैं। जिसका नतीजा होता है कि कविता पाठ सुन कर मुर्गे भोर होने का भ्रम पाल बैठते हैं और बांग देना शुरू कर देते हैं। पड़ोस के कई लोगों ने अलार्म लगाना बंद कर दिया है, वह निठल्लेराम के कविता पाठ से अपनी निद्रा को विराम देते हैं।

कवि निठल्लेराम को कवितइ का अपच इतना अधिक हो जाता है कि जब जी चाहता है कमरे से बाहर निकलकर गली से गुजरती किसी युवती के रूप सौंदर्य का नख-सिख वर्णन शुरू कर देते हैं। उनकी यह हरकत कभी उन्हें जूती खिला देती है और कभी तो बूस्टरडोज का काम भी करती है। बूस्टरडोज तब मिलता है जब कोई रूपवती उनकी कवितइ से मंत्रमुग्ध होकर उनकी तरफ कनखियों से देख मुस्कुराते हुए आगे बढ़ जाती है। लेकिन जब यही हरकत भाभीजी की दिव्य दृष्टि में आ जाती है तो बेलन प्रहार शुरू हो जाता है। लिहाजा कुछ दिनों के लिए कविता का लय, छंद और ताल बिगड़ जाता है। लेकिन जल्द ही उनकी कविता क्रांति लौट आती है।

कवि अगर अपनी कविता न सुनाएं तो उन्हें अपच की बीमारी हो जाती है। इस हालात में हम अपना पड़ोसी धर्म निभाना नहीं भूलते हैं। बारिश के मौसम में मुझे गरमा गरम पकौड़े निगलना अच्छा लगता है। हमें पकौड़े खाने का जब मन करता है तो हम निठल्लेराम के कविखाने में पहुंच जाते हैं। तत्काल भाभीजी को पकौड़े तलने और गरमा-गरम चाय लाने का आदेश जारी होता है और हम कविता का आनंद लेना शुरू कर देते हैं। लेकिन वाह-वाह करना नहीं भूलते, क्योंकि एक सजग श्रोता को इस बात का हमेशा ख्याल रखना चाहिए कि वाह-वाह कवि के लिए बूस्टरडोज होता है। इसकी वजह से कवि का इम्यून सिस्टम मजबूत होता है। कविता और कवि की इम्यूनिटी कभी खत्म नहीं होती।

पोस्ट

'जो देश के नागरिक है, वही चुनाव में वोट डालें', चुनाव आयोग की इस बात से भी किसी को कोई असहमति हो सकती है?
अमिताभ अग्निहोत्री@Aamitabh2

क्या राज ठाकरे लोगो को बताएंगे कि किसको क्या करना चाहिए? किस भाषा में बोलना चाहिए? महाराष्ट्र की जनता ने पहले भी इनका हिसाब किया है और आगे भी करेगी। ठाकरे बंधुओं को भाषा के नाम पर नफरत फैलाने से बाज आना चाहिए।
ऋचा अनिरुद्ध@richaanirudh

अरुणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री पेमा खांडू का यह कहना तथ्यात्मक रूप से सही है कि किसी भी भारतीय राज्य की सीमा चीन से नहीं लगती। हम केवल तिब्बत से सीमाएं साझा करते है, जिस पर चीन ने बलात कब्जा कर लिया।
वेद प्रकाश मलिक@Vedmalik1

गुजरात में एक पुल गिरने से कई लोगो की मौत हो गई। 40 साल पुराने इस पुल की पिछले साल ही मरम्मत हुई थी, उसके बावजूद यह हादसा हो गया। यह शत प्रतिशत घोर लापरवाही और शून्य जवाबदेही का मामला है।
श्रेया धौंडियाल@shreyadhoundial

जागरण जनमत | कल का परिणाम

क्या बिहार विस चुनाव को लेकर चिराग पासवान का रवैया राजग खेमे में विवाद पैदा करने वाला है?

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल
क्या बिहार की तरह देश भर में मतदाता सूचियो का व्यापक सत्यापन एवं पुनरीक्षण होना चाहिए?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

'दो लड़के' फिर आ गए करने आरम्पार,
पहले यूपी लक्ष्य था अब है लक्ष्य बिहार।
अब है लक्ष्य बिहार किंतु बदली है जोड़ी,
देखो कितनी दूर चलेगी लिल्ली घोड़ी!
मुद्दा वोटर लिस्ट बनाकर भड़के-भड़के,
बना रहे माहौल आजकल फिर 'दो लड़के'!!
- ओमप्रकाश तिवारी

धनंजय प्रताप सिंह
राज्य ब्यूरो प्रमुख, नईदुनिया, मध्य प्रदेश

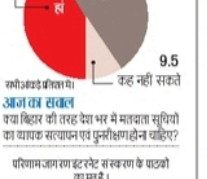

मध्य प्रदेश डायरी

मोहन सरकार ने पेश की आदर्श पहल

सरकारी कर्मचारियों के तबादले मध्य प्रदेश में हों या फिर किसी भी राज्य में, कई तरह के आरोप-प्रत्यारोप सामने आते ही हैं। मंत्रियों पर तबादले के नाम पर वसूली जैसे आरोपों की भरमार रहती है। वर्ष 2025 में प्रदेश सरकार ने लगभग 80 हजार तबादले किए, लेकिन वर्षों बाद देखा गया कि सरकार या मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के छींटे नहीं पड़े। दरअसल, प्रदेश में वर्ष 2023 से तबादले नहीं हुए थे। तब विधानसभा चुनाव सामने थे, सरकार को डर था कि तबादलों पर प्रतिबंध हटाया तो बड़ी संख्या में तबादले होंगे और लेन-देन के आरोपों से प्रतिपक्ष को मुद्दा मिल जाएगा। वर्ष 2024 में भी सरकार ने स्थानांतरण पर प्रतिबंध नहीं हटाया। इस वर्ष सरकार ने एक से 17 जून तक तबादलों में छूट दी थी। इस अवधि में राज्य स्तर से तबादले हुए, साथ ही इक्का-दुक्का मामलों को छोड़कर जिला स्तर पर भी प्रभारी मंत्रियों के द्वारा तबादले किए गए।

मध्य प्रदेश में हुए तबादलों पर चर्चा इसलिए की जा रही है, क्योंकि पहली बार ऐसा हुआ कि सरकार के दामन पर किसी तरह का दाग नहीं लगा। इसमें मुख्यमंत्री डा. मोहन यादव की पहल भी कारगर रही कि जिन-जिन विभागों में तबादले किए गए हैं, अब उनमें किसी भी सूरत में कोई बदलाव नहीं किया जाएगा। इसका आशय यह हुआ कि न तो तबादला रद होगा और न ही संशोधित। वैसे इस मामले की शुरूआत कैबिनेट की बैठक से हुई थी, जहां लोक निर्माण मंत्री राकेश सिंह ने डा. मोहन यादव से कहा कि जिन इंजीनियर्स के तबादले किए गए हैं, हम उनमें कोई संशोधन नहीं करेंगे। यही बात सीएम ने सभी मंत्रियों से कह दी कि किसी की भी सिफारिश आए, आप दबाव में न आएं और तबादलों में संशोधन न करें। सीएम ने कहा कि मंत्री ऐसी आदर्श व्यवस्था प्रस्तुत करें कि तबादलों को लेकर प्रतिपक्ष को मुद्दा न मिल पाए। हुआ भी यही, पहला अवसर है, जब सरकार पर तबादला व्यवसाय चलाने का कोई आरोप प्रतिपक्ष भी नहीं लगा पाया है।

जनसुनवाई के दौरान ग्रामीणों की समस्याएं सुनते विदिशा के कलेक्टर अंशुल गुप्ता। फाइल

एक दौर ऐसा भी था, जब कांग्रेस सरकार में पीडब्ल्यूडी मंत्री पर तबादलों के नाम पर वसूली करने के आरोप भी लगे थे और लोकायुक्त में इसकी शिकायत भी हुई थी। मध्य प्रदेश के ही कुछ पड़ोसी राज्य ऐसे हैं, जहां तबादलों के नाम पर सरकार के ही मंत्री आपस में लड़ गए और विपक्ष को मुद्दा मिल गया। ऐसे दौर में बड़ी संख्या में बिना किसी विवाद के तबादले करना भी मोहन सरकार के लिए बड़ी उपलब्धि है। वैसे मोहन सरकार ने कई जटिल मामलों में सुधार की पहल भी की है। इसमें कर्मचारी, किसान से जुड़े मुद्दे शामिल हैं। पहला तो कर्मचारियों को पहले की सरकार केंद्र के समान डीए तो देती थी, लेकिन अफसरशाही के दबाव में कई महीनों का डीए सरकार हजम कर जाती थी, मोहन सरकार ने इस व्यवस्था में बदलाव किया। जिस तारीख से डीए केंद्र ने दिया, उसी तिथि से प्रदेश में कर्मचारियों को उनका हक दिया गया। इसका नकद भुगतान किश्तों में किया गया। इसे लेकर कर्मचारियों के बीच सीएम की छवि बेहतर हुई है।

दूसरा मुद्दा पदोन्नति में आरक्षण का है। पिछले नौ वर्षों से सरकार ने इसमें हाथ नहीं लगाया। मोहन सरकार ने इसके नियम बनाए और पदोन्नति आरंभ करने की पहल की। भले ही यह मामला कानूनी उलझन में फंस गया, लेकिन सरकार की पहल को बड़े वर्ग ने सराहा है। एक और अच्छी बात यह है कि इन दिनों मध्य प्रदेश में डा. मोहन सरकार को मुख्य सचिव के रूप में अनुराग जैन जैसा ईमानदार अधिकारी मिला है, जिसने आइएएस और आइपीएस अधिकारियों की पोस्टिंग में पैसे लिए जाने की धारणा को तोड़ा है।

कहा जाए जाए तो डा. मोहन यादव सरकार की छवि बेहतर बनाने में सीएम- सीएस की जोड़ी का बड़ा योगदान है। जिस वल्लभ भवन में उच्च स्तर पर अधिकारियों द्वारा भारी भ्रष्टाचार के आरोप लगना स्वाभाविक बात हो गई थी, उस धारणा में भी बदलाव आया है। मोहन सरकार के डेढ़ वर्ष के कार्यकाल में यह बड़ी उपलब्धि रही कि जिलों में भी जिन अधिकारियों को कमान दी गई है, वे सभी साफ-सुथरी छवि के हैं। राजधानी सहित विदिशा-रायसेन, उज्जैन सहित कई जिलों के कलेक्टर गांव में जाकर जनसुनवाई कर रहे हैं। राजस्व विभाग में सीमांकन से लेकर भूमि विवाद के मामलों के निपटारे नहीं हो रहे थे, कलेक्टरों ने इसकी गति बढ़ाई है।

स्वाभाविक है जब प्रशासन जनता के बीच जाएगा, तो सुशासन का संदेश जनता तक पहुंचेगा। मोहन सरकार ने तबादले जैसी कठिन चुनौती में भी देशभर के लिए सुशासन का संदेश दिया है, यह अन्य राज्यों के लिए भी सीख है। जिस 90 डिग्री कोण वाले भोपाल के ऐशबाग आरओबी के लिए मध्य प्रदेश की देशभर में बदनामी हुई, उसमें मुख्य अभियंता से लेकर उपयंत्री को निलंबित कर मोहन सरकार ने यह संदेश भी दिया है कि लापरवाही किसी भी सूरत में बर्दाश्त नहीं की जाएगी। शुचिता का यह अभियान मोहन सरकार कायम रखती है तो आने वाले समय में इसके और भी अच्छे परिणाम सामने आएंगे।

हिमाचल प्रदेश डायरी

जी, पहाड़ ही टूट पड़ा है

नवनीत शर्मा
राज्य संपादक, हिमाचल प्रदेश

पहाड़ टूट पड़ना एक कहावत है। उसका अर्थ मंडी जिले की सराज घाटी पर आई आपदा समझा सकती है। यहां के एक निवासी बुधराम मलबे के साथ बह कर नहीं मरे... पांच गाड़ियां और घर का एक हिस्सा बह जाने का आघात नहीं झेल पाए। सराज घाटी का मुकेश 30 जून की रात जब पंजाब के मालेरकोटला में सबको छोड़ कर वापस आया तो उसके बच्चों ने फोन पर कहा, 'पापा, घर मत आना, यहां बहुत बारिश है।' मुकेश उतना ही जीवित है जितना कोई पत्नी, बच्चों और घर को गंवा कर हो सकता है। उसे राशन मिल रहा है, परंतु पकाने के लिए बर्तन नहीं थे।

कुकर की एक सीटी से गल जाने वाले राजमा के लिए जानी जाती सराज घाटी के लोगों ने इतना बड़ा दंश झेला है कि शब्द खो गए हैं, आवाज अटक गई है और उन कपड़ों के सिवा कुछ बचा नहीं जो पहने हुए हैं। प्रशासन और दानी संस्थाएं राहत सामग्री पहुंचा रहे हैं। कभी शौक से दूसरों को खिलाने वाले आज शरणार्थी शिविर की कतारों में भात और दाल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मंडी में ही 19 लोग मरे हैं, जबकि 52 लापता हैं। इस सबमें राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला थुनाग की दो बेटियां स्नेहा और पूनम एनएसएस स्वयंसेवी के रूप में सबको मरहम दे रही हैं। हालांकि उनका भी काफी कुछ बह गया है, पर जो बच गए हैं, उनकी सेवा करने को इन्होंने कर्तव्य माना है। इनके अलावा एक चेहरा जो निरंतर कई किलोमीटर पैदल चल कर अपने आंसू छुपाता हुआ, सबकी पीठ पर हाथ रखता हुआ घूम रहा है, वह हैं पूर्व मुख्यमंत्री एवं स्थानीय विधायक जयराम ठाकुर। क्योंकि सराज ने जयराम को और फिर जयराम ने सराज को बनाया और संवारा है, वह निरंतर अपने क्षेत्र के साथ बने हुए हैं। बुधवार को ही भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष जगत प्रकाश नड्डा और मुख्यमंत्री सुखविंदर सिंह सुक्खू भी प्रभावित क्षेत्र में पहुंचे।

मुख्यमंत्री सुखविंदर सिंह सुक्खू एक 81 वर्षीय महिला को गले लगाते हुए समस्या और समाधान को एक ही पंक्ति में यूं व्यक्त करते हैं, 'माता जी, हम आपका घर बनाएंगे, गाय, बकरी का पैसा भी देंगे, पर अब घर नाले के पास नहीं बनाना है।' मुख्यमंत्री का यह भी कहना है कि ठाकुर जयराम जी से रोज बात हो रही है और कार्य चल रहा है। इससे पूर्व उपमुख्यमंत्री मुकेश अग्निहोत्री और लोक निर्माण मंत्री विक्रमादित्य सिंह भी क्षेत्र में पहुंचे थे। मंडी से लोकसभा सदस्य कंगना रनौत आई थीं और हंसते हुए कह गईं कि उनके पास कैबिनेट नहीं है और उनसे बेहतर तो पंचायत प्रधान होता है। आपदा में यह कहना कितना उचित था, इस पर उनके परामर्शक मंडल (यदि कोई है) को विचार करना चाहिए।

मूल प्रश्न दो हैं। पहला यह कि क्या आपदा राहत और आपदा पर्यटन में अंतर नहीं होना चाहिए? इस समय प्रशासन को अपना कार्य करने देना चाहिए, उसका सहयोग करना चाहिए। नीति निर्धाताओं को तो उनका मार्गदर्शन करना चाहिए। हर पक्ष से सहायता आ रही है, यह अच्छी बात है, किंतु क्या बिना चित्र के सहायता को सहायता नहीं समझा जाएगा? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या नीतिगत रूप से अब यह विचार करने का समय नहीं आ गया है कि पहाड़ ऐसे व्यवहार क्यों कर रहा है। पेड़ कटेंगे तो मिट्टी ढीली पड़ेगी, मिट्टी ढीली पड़ेगी तो पानी के साथ पहाड़ बहेगा। पानी का रास्ता रोकेंगे तो पानी कहीं से भी रास्ता बनाएगा। और उस कहीं में किसी का घर हो सकता है, सेब के बाग हो सकते हैं और हो सकते हैं खेत। पहाड़ पर कंक्रीट का

मंडी में 30 जून को आई आपदा के बाद जंजैहली बाजार में केवल मलबा ही दिख रहा है। फाइल

बोझ इस मोह में लादा गया है कि पहाड़ मैदान की तरह हो सके। लेकिन पहाड़ को मैदान की तरह होना है तो पहाड़ वास्तव में मैदान ही बन जाएंगे, यह बार-बार की आपदा बता रही है। जिस बहुमंजिला भवन निर्माण को विकास समझा जा रहा है, वह भी जड़ों से कटने का एक उदाहरण है। और उसका प्रभाव दिखाई दे रहा है। जलस्रोतों के सम्मान की परंपरा समाप्त हुई तो क्या मनुष्य बचेगा? इसी क्रम में कुल्लू के बिजली महादेव में जिस प्रकार रोपवे के लिए पेड़ कटान हो रहा है, उस पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता है।

हालांकि बाढ़ में बह कर आई लकड़ी पर पक्ष और प्रतिपक्ष मुखर हैं, किंतु मुख्यमंत्री ने इसकी सीआइडी जांच की बात कही है। जांच में यह देखा जाएगा कि कटी हुई लकड़ी आई है या पेड़ जड़ों से उखड़ गए हैं। यदि कटी हुई लकड़ी आई है तो इसका अर्थ यही होगा कि वन विभाग ही नहीं, राजनीतिक और सामाजिक मिट्टी कमजोर हो चुकी है। यदि पेड़ जड़ों समेत उखड़ कर आए हैं तो स्वाभाविक है कि पहाड़ अब मजबूत नहीं रहा, मिट्टी अपनी पकड़ खो चुकी है। हिमाचल प्रदेश के भविष्य को बचाने के लिए यह अनिवार्य है कि जांच नीर क्षीर हो। विषय कांग्रेस या भाजपा का नहीं, हिमाचल प्रदेश का है। पहाड़ तब तक ही अच्छे लगते हैं, जब तक वे पहाड़ बने रहें।

****

www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
गुरुवार 10 जुलाई, 2025

दैनिक जागरण

आचरण व्यक्तित्व का प्रतिबिंब होता है

एक और पुल गिरा

यह बड़े दुख, शर्म और देश को बदनाम करने वाली बात है कि गुजरात में फिर एक पुल गिर गया। उस पर से गुजर रहे कुछ वाहन नदी में समा गए और कई लोग मारे गए। इस पुल को करीब 40 साल पुराना बताया जा रहा है, पर 40 वर्ष पुराना बड़ी बात नहीं। दुर्भाग्य से अपने देश में तो चार वर्ष पुराने पुल भी ढह जाते हैं। कभी-कभी तो नए बने अथवा निर्माणाधीन पुल गिर जाते हैं। कुछ समय पहले बिहार में पुलों के गिरने का तांता लगा था। बात केवल पुलों की ही नहीं है, बुनियादी ढांचे संबंधी अन्य निर्माण की भी है। जब कोई पुल, हाईवे आदि बनता है तो कहा जाता है कि यह इंजीनियरिंग का कमाल है, लेकिन कुछ ही समय बाद या तो वे धंस जाते हैं या उनमें जल भराव होने लगता है। ऐसा खराब इंजीनियरिंग और डिजाइन के कारण होता है। पुलों, सड़कों आदि का खराब निर्माण जारी है। उनकी मजबूती पर कोई ध्यान नहीं देता-न तो सीपीडब्ल्यूडी, पीडब्ल्यूडी जैसी सरकारी एजेंसियां और न ही केंद्र एवं राज्य सरकारें।

चूंकि गुजरात प्रधानमंत्री और गृहमंत्री का गृह प्रदेश है, इसलिए विपक्षी दलों को यह कहने का मौका मिला है कि गुजरात माडल की पोल खुल गई, लेकिन बाकी राज्यों में भी तो सरकारी निर्माण की यही स्थिति है। सरकारी निर्माण में लापरवाही के पीछे मूल कारण नेताओं, नौकरशाहों, इंजीनियरों, ठेकेदारों आदि का भ्रष्टाचार है। इस भ्रष्टाचार से सरकारें अवगत हैं, लेकिन कोई निर्माण कार्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने के लिए गंभीर नहीं। जब कोई घटना घट जाती है और लोग मारे जाते हैं तो मुआवजे की घोषणा के साथ जांच-कठोर जांच का वादा किया जाता है, पर होता कुछ नहीं है। यदि यही सिलसिला कायम रहा तो भारत को विकसित बनाने का दावा थोथा साबित होगा। आखिर जिस देश का बुनियादी ढांचा ढहता रहे, वह विकसित कैसे बन सकता है? विकसित देशों में तो ऐसा घटिया निर्माण नहीं होता। अपने यहां अंग्रेजों के बनाए पुल तो कायम हैं, लेकिन भारतीयों की ओर से बनाए गए निर्माण गिरते रहते हैं। हाईवे, पुल आदि के निर्माण में खामी की बात कई बार केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी मान चुके हैं, लेकिन गलती मानने का तब कोई मतलब नहीं, जब उसमें सुधार न हो। आखिर यह सुधार कौन करेगा? यह धारणा है कि मोदी सरकार भ्रष्टाचार के खिलाफ सख्त है, लेकिन वह सख्ती नजर क्यों नहीं आती? यदि भारत को विकसित बनना है तो निर्माण कार्यों की गुणवत्ता हर हाल में सुनिश्चित करनी होगी। इसके लिए भ्रष्ट तत्वों को दंडित करना होगा। अपने यहां भ्रष्ट अधिकारी तो बड़ी कठिनाई से दंडित होते हैं। आखिर कितने हादसों के बाद आंखें खुलेंगी? किसी भी निर्माण कार्य की गुणवत्ता से समझौता लोगों की जान से खिलवाड़ और सरकारी संसाधनों की बर्बादी ही है।

छांगुर के पोषक

हिंदू युवतियों को प्रेमजाल में फंसाकर मतांतरण कराने वाले उत्तर प्रदेश के बलरामपुर के मधपुर गांव में जलालुद्दीन उर्फ छांगुर बाबा की सहयोगी नीतू नवीन रोहरा उर्फ नसरीन की कोठी भले ध्वस्त कर दी गई हो, परंतु कोठी आखिर बनी कैसे? इस बात की भी जांच होनी चाहिए। क्या वह नियमों के तहत बनी है या इसमें नियम-कानून की अनदेखी की गई है, इसकी भी जांच होनी चाहिए। जिस प्रशासन ने सरकारी जमीन पर कोठी के अवैध निर्माण को लेकर नोटिस दी, उसकी भूमिका की भी जांच होनी चाहिए। प्रशासन का तंत्र दिल्ली से लेकर देश की पंचायत तक है और सबकी जिम्मेदारी तय है। जहां निर्माण हुआ, वहां भी कोई तहसीलदार, पंचायत सचिव या ब्लाक स्तर के अन्य अधिकारी रहे होंगे। सवाल है कि निर्माण के समय ही ऐसी धृष्टता को रोका क्यों नहीं गया? अवैध निर्माण रोकने का तंत्र अपनी जिम्मेदारी ठीक से नहीं निभा पाया। 12 करोड़ रुपये की कोठी सरकारी जमीन पर बन जाए और प्रशासनिक तंत्र को भनक न लगे, यह कैसे हो सकता है? तब जब वहां डिग्री कालेज जैसे संस्थान के संचालन के लिए भी निर्माण हो रहा था। अवैध मतांतरण कराने का गिरोह चलाने के आरोपित जलालुद्दीन के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई का भरोसा मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने भी दिया है। अब तो कोशिश यह होनी चाहिए कि सिस्टम को धता बताकर कोई छांगुर बाबा पैदा ही न हो। कभी सड़कों पर नग और अंगूठियां बेचने वाला एक शख्स रुपये के बल पर दूसरे का धर्म नष्ट करने का दुस्साहस करे तो उसकी जड़ मिटनी ही चाहिए।

सवाल यह है कि निर्माण के समय ही ऐसी धृष्टता को रोका जा सकता था जो लापरवाही के कारण न हो सका

राजनीतिक दुर्भावना का निशाना बनी हिंदी

प्रो. निरंजन कुमार

ठाकरे जैसे नेताओं का हिंदी विरोध न केवल महाराष्ट्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का अपमान है, बल्कि स्वयं मराठी लोगों के हित में भी नहीं है

संकीर्ण राजनीति जनहित तथा राष्ट्रहित के बजाय तुच्छ स्वार्थ से संचालित होती है। ऐसी राजनीति करने वाले नेता वास्तविक मुद्दों के बजाय जाति, क्षेत्र और भाषा के छद्म मुद्दों पर जनता को बरगलाते हैं, जिसमें स्वार्थ प्रथम और जनहित या राष्ट्र अंतिम होता है। ऐसी ही राजनीति इन दिनों महाराष्ट्र में हिंदी विरोध के नाम पर देखी जा रही है। कथित भाषा को लेकर हो रही यह राजनीति राष्ट्रहित में तो नहीं ही है, बल्कि 'मराठी मानुष' के लिए भी हितकारी नहीं है। यह हालिया विवाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत कक्षा पांच तक के लिए तीसरी भाषा के रूप में हिंदी को अनिवार्य बनाने के राज्य सरकार के फैसले से शुरू हुआ। हालांकि विरोध के बाद हिंदी को वैकल्पिक कर दिया गया, लेकिन अपना सियासी वजूद गंवा रहे उद्धव ठाकरे की शिवसेना (यूबीटी) और राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (मनसे) ने इसमें तमिलनाडु या कर्नाटक की तर्ज पर एक मौका देखा। यूबीटी और मनसे ने मिथ्या आरोप लगाया कि सरकार मराठियों पर हिंदी थोप रही है। हिंदी के इस विरोध के पीछे विशुद्ध राजनीतिक स्वार्थ दिखता है, जिसकी अभिव्यक्ति उस मंच पर दिखी जब दशकों तक एक दूसरे के विरोधी रहे उद्धव और राज ठाकरे एक साथ आ गए। साफ है कि बीएमसी सहित आगामी निकाय चुनाव से पहले अपना राजनीतिक अस्तित्व बचाने के लिए ये नेता हिंदी विरोध को आखिरी दांव के रूप में आजमा रहे हैं।

हिंदी एवं उत्तर भारतीयों का विरोध करने वाले इन नेताओं को जानना चाहिए कि मराठी अस्मिता के दो सबसे प्रखर प्रतीक छत्रपति शिवाजी और उनके पुत्र छत्रपति संभाजीराजे का हिंदी और हिंदी क्षेत्र के लोगों से क्या संबंध था। जब औरंगजेब ने 1666 में शिवाजी को आगरा में धोखे से नजरबंद कर लिया, तब टोकरियों में छिपकर भगाने में स्थानीय हिंदी पट्टी के लोगों की अहम भूमिका रही। यही नहीं, शिवाजी ने 1674 में अपने राज्याभिषेक के लिए काशी यानी हिंदी क्षेत्र के ही पुरोहितों को बुलाया था। शिवाजी के पुत्र संभाजीराजे का भी हिंदी वालों से गहरा नाता था। इतिहासकार जदुनाथ सरकार 'शिवाजी एंड हिज टाइम्स' पुस्तक में बताते हैं कि संभाजीराजे हिंदी के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने हिंदी भाषा में 'सातशतक', 'नखशिखा' और 'नायिकाभेद' नामक पुस्तकें भी लिखीं। मराठा इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत 'मराठी बखरों' के अनुसार काशी, प्रयाग, मथुरा आदि से उनका आत्मीय संपर्क रहा, जहां से विद्वानों-कलाकारों को वे बुलाते थे।

अवधेश राजपूत

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अंग्रेजों के खिलाफ हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में एक अस्त्र बनाने का विचार महाराष्ट्र के ही एक सपूत ने दिया था। 1864 में महाराष्ट्र के श्रीमान पेंठे ने मराठी भाषा में 'राष्ट्रभाषा' नामक पुस्तक में लिखा कि आज देश की एकता के लिए एक भाषा की जरूरत है और वह भाषा हिंदी ही हो सकती है। महाराष्ट्र के ही लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले और काका कालेलकर आदि ने भी हिंदी अपनाने की पुरजोर वकालत की। आज महाराष्ट्र की जनता को शिवाजी, संभाजीराजे और स्वाधीनता आंदोलन की महान, उदार विरासत को बताने की जरूरत है ताकि वे इन संकीर्ण नेताओं के बहकावे से बच सकें।

उद्धव ठाकरे की पोल तो इस तथ्य से भी खुल जाती है कि जब वह मुख्यमंत्री थे, तभी हिंदी को मराठी एवं अंग्रेजी कक्षा के साथ-साथ कक्षा एक से 12 तक अनिवार्य बनाने का फैसला जनवरी 2022 में कर लिया था। यह राजनीतिक पाखंड की पराकाष्ठा ही है कि बीएमसी समेत आगामी निकाय चुनावों में राजनीतिक लाभ के लिए उद्धव आज हिंदी विरोध को हवा दे रहे हैं। इन नेताओं का राजनीतिक मुखौटा तब एकदम बेनकाब हो जाता है कि मराठी भाषा की चिंता करने वाले ठाकरे बंधु मुस्लिम इलाकों में मराठी के प्रश्न पर चुप्पी साध लेते हैं। मुस्लिम वोट बैंक के बारे में उद्धव गुट के नेता संजय राउत का हालिया कथन है कि मुस्लिम वोटों की चिंता करने की जरूरत नहीं, क्योंकि सब लोग हमारे साथ हैं। दरअसल यह मुस्लिम वोट बैंक छिटक न जाए, इसलिए मुस्लिम इलाकों में मराठी लागू कराने की उनकी कोई मंशा नहीं।

महाराष्ट्र के बच्चों को हिंदी से वंचित करना उनके करियर के लिए भी ठीक नहीं। इसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि मुंबई में ही हिंदी फिल्म एवं मनोरंजन उद्योग केंद्रित है, जिससे लाखों मराठी लोगों की आजीविका चलती है। आज करियर की भाषा के रूप में हिंदी एक नया मुकाम बना रही है। देश के चार सबसे बड़े अखबार हिंदी भाषा के ही हैं। देश में सबसे अधिक टीवी और यूट्यूब चैनल हिंदी के हैं। टेलीविजन विज्ञापनों में 70 प्रतिशत से अधिक विज्ञापन हिंदी में हैं, जिनके लिए हिंदी कापीराइटर्स चाहिए। भारत के हर राज्य या महाराष्ट्र के ही तमाम विश्वविद्यालयों और कालेज में हिंदी पढ़ाई जाती है। यहां तक कि 200 विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। आर्थिक रूप से उभरते भारत में मल्टीनेशनल कंपनियों को अपने कंटेंट के लिए भारतीय भाषाओं और मुख्य रूप से हिंदी के कंटेंट राइटर या एडिटर की आवश्यकता होगी। दिल्ली विश्वविद्यालय में ही हिंदी पढ़ने वाले विदेशी छात्रों की संख्या एक दशक में दोगुनी हो गई है। हिंदी का विरोध महाराष्ट्र के बच्चों को तमाम अवसरों और नई संभावनाओं से वंचित ही करेंगे। इसके अतिरिक्त हिंदी का विरोध राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सौहार्द के लिए भी ठीक नहीं।

महाराष्ट्र के लोगों को यह भी समझने की जरूरत है कि 'महाराष्ट्र' नाम ही एक व्यापक भाव भूमि का प्रतीक है। महाराष्ट्र यानी वह क्षेत्र जो राष्ट्र का महाभाव लिए है, जो देश के सभी हिस्सों के लोगों को आत्मीय भाव से अपनाता हो। देश के किसी भी राज्य के नाम में राष्ट्र शब्द नहीं लगा है। हिंदी विरोध की निकृष्ट राजनीति द्वारा कमजोर होती राजनीतिक जमीन को मजबूत करने की ठाकरे बंधुओं की कोशिश कितनी सफल होगी, यह भविष्य ही बताएगा। इतना स्पष्ट है कि यह विरोध न केवल महाराष्ट्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का अपमान है, बल्कि स्वयं मराठी लोगों के हित में भी नहीं है।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा समिति के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

गांवों में बढ़ते जा रहे खाली पड़े घर

सुधीर पंवार

गांव हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, इन्हें सूनेपन से बचाने की योजना पर सभी सरकारों को काम करना होगा

कभी पहाड़ी राज्यों एवं सीमावर्ती गांवों में घरों के मुख्य द्वार पर ताले लटके दिखाई देते थे, लेकिन अब पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि के समृद्ध गांवों में भी सूनेपन का यह दायरा तेजी से बढ़ रहा है। मानव सभ्यता का इतिहास स्थानांतरण से जुड़ा है। गांव ही शहरों के रूप में विकसित हुए। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा में ग्रामीण एवं नगरीय सभ्यता के साथ-साथ रहने के प्रमाण मिलते हैं। ऐसे कई प्रमाण वेदों एवं उपनिषदों में भी हैं। ग्रामीण आर्थिकी लंबे समय तक कृषि एवं उससे जुड़े कुटीर उद्योगों पर आधारित रही। यह सीमित आवश्यकताओं एवं वस्तु विनिमय आधारित बाजार के कारण आत्मनिर्भर भी रही। खेती के मशीनीकरण से पहले मानव श्रम पर आधारित होने के कारण संयुक्त परिवार तथा पशुपालन के लिए गांवों में बड़े आवास एक आवश्यकता थे। गांवों मे संयुक्त परिवार तथा सामाजिक संगठन उसी का परिणाम थे।

समय के साथ औद्योगिक क्रांति ने ग्रामीण एवं नगरीय संबंधों को बदल दिया। इसके चलते गांवों की भूमिका और प्रकृति में भी परिवर्तन होते गए। समय की बदलती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए संक्रमण की इस अवधि में समाज से लेकर नीति-नियंताओं ने परिवर्तन के साथ जुड़े अन्य प्रभावों को अनदेखा किया, जिसके कालांतर में दूरगामी परिणाम देखने को मिले। उद्योगीकरण से समृद्धि तो आई, लेकिन गांव नगरीय उपनिवेश में तब्दील होते गए। कृषि के मशीनीकरण और गांवों में बाजार के विस्तार के बाद व्यापारियों, दस्तकारों, गैर कृषि तथा कृषि श्रमिकों का नकारात्मक एवं सकारात्मक कारणों से शहरों की ओर प्रव्रजन हुआ।

औद्योगिक क्रांति ने ग्रामीण एवं नगरीय संबंधों को बदल दिया, गांवों की प्रमुख भूमिका नगरों को सस्ता खाद्यान्न एवं मानव श्रम उपलब्ध कराने की हो गई, नगर औद्योगिक एवं अन्य व्यावसायिक गतिविधियों के विशिष्ट केंद्रों के रूप में विकसित हुए। उद्योगीकरण के विस्तार के लिए सरकारों ने कृषि उत्पादों एवं मानव श्रम को सस्ता रखने की नीतियां बनाईं जिससे उद्योगों के साथ-साथ नगरों का तेजी से विस्तार हुआ। विस्तार की यह प्रक्रिया समय के साथ और व्यापक होती गई।

ऐसे वीरान घर बढ़ा रहे गांवों का सूनापन। फाइल

गांवों में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार तथा शहरों में बढ़ते रोजगार के अवसरों के कारण किसान परिवारों का भी सरकारी एवं निजी सेवाओं में प्रतिनिधित्व बढ़ा है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1960 में ग्रामीण क्षेत्रों में 81.60 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती थी, जो संभवतः इन्हीं कारणों से 2022 में घटकर 64.17 प्रतिशत रह गई। आज ग्रामीण क्षेत्रों में काम के अवसरों में कमी, खेती में घटती आय, गांवों के प्रति सरकारी उदासीनता तथा शहरों में नियोजित विकास, सार्वजनिक सुविधाएं, सेवा क्षेत्रों का विस्तार तथा रोजगार के अवसरों के कारण बड़ी-बड़ी संख्या में ग्रामीण युवक, युवतियां गांव छोड़कर शहरों में बस रहे हैं। पंजाब के गांवों के आर्थिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन से चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं। यहां 14.34 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों से एक या अधिक सदस्य विदेश में हैं। पुरुषों के बाहर जाने से गांवों में महिलाओं एवं अकेले बुजुर्गों की संख्या बढ़ी है, बड़े-बड़े घरों में ताले लटक रहे हैं। उप्र आर्थिक सर्वे की रिपोर्ट बताती है कि उद्योग एवं सेवा क्षेत्र वाले जिले गौतमबुद्ध नगर की प्रति व्यक्ति आय कृषि आधारित प्रतापगढ़ से 22 गुना अधिक है।

बिहार, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों से बड़ी संख्या में खेतिहर मजदूर पंजाब के गांवों में बस रहे हैं, जिससे वहां का धार्मिक-सामाजिक ढांचा बदल रहा है। बिहार, उत्तर प्रदेश आदि से मजदूर केरल जैसे दक्षिण के राज्यों में भी जा रहे हैं। कठिन भौगोलिक स्थितियों एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण हिमाचल एवं उत्तराखंड के युवाओं का भी तेजी से महानगरों की ओर विस्थापन हो रहा है। यहां बुजुर्ग अकेलेपन के विषाद के साथ जीवन बिता रहे हैं, जिसकी वास्तविकता हमें 'पायर' फिल्म के पदम सिंह एवं उसकी पत्नी तुलसी के चरित्र में दिखती है, जो पहाड़ों में अपने बेटे की प्रतीक्षा में जीवन बिता रहे हैं।

कोरोना के बाद घरेलू पर्यटन में वृद्धि हुई है। इसका लाभ लेने के लिए पहाड़ी राज्यों में मैदानी क्षेत्रों के व्यवसायी होटल एवं रिजार्ट में निवेश कर रहे हैं, जिसके कारण पहाड़ी पर्यटन स्थलों से स्थानीय निवासी बाहर हो रहे हैं। इसके चलते वहां पर असंतोष पनप रहा है। हालांकि इसे दूर करने के लिए संबंधित सरकारों ने राज्य से बाहर के निवासियों के लिए जमीन खरीदने पर प्रतिबंध लगाए हैं, लेकिन यह ट्रेंड बढ़ता जा रहा है। अधिकांश मैदानी राज्यों के गांवों का भी यही हाल है। यहां भी सरकारी सेवा एवं व्यवसाय के लिए शहर में बस गए परिवारों के घरों पर ताले लटके हैं। पुरखों के सम्मान से जुड़े होने के कारण वे उन्हें बेच भी नहीं पा रहे हैं। लिहाजा धीरे-धीरे वे निष्प्रयोज्य एवं वीरान हो रहे हैं। सीमावर्ती गांवों के घरों एवं पुरानी हवेलियों के पुनरुद्धार के लिए केंद्र सरकार एवं संबंधित राज्य सरकारों ने कई योजनाएं चलाई हैं, लेकिन गांवों के उन सामान्य घरों के लिए कोई योजना नहीं है, जो उनके स्वामियों के शहर में रहने के कारण बंद/खाली पड़े हैं। इसे लेकर राज्यों को भी चेतना चाहिए और केंद्र को भी।

(लेखक उत्तर प्रदेश योजना आयोग के पूर्व सदस्य हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

चरित्र की परीक्षा

जीवन की गाड़ी सदैव एक समतल-सुगम पथ पर ही आगे नहीं बढ़ती। जीवन यात्रा पथ कभी पुष्पों से सजा होता है, तो कभी कांटों की शैय्या बन जाता है। सफलता, ऐश्वर्य और आनंद के क्षणों में व्यक्ति का वास्तविक चरित्र छिपा रह सकता है, लेकिन जब विपत्तियां दस्तक देती हैं, तभी व्यक्ति के भीतर के मूलभूत गुणों, नैतिक बल के साथ ही उसका वास्तविक चरित्र उजागर होता है। कठिन समय ही वह कसौटी है, जो निर्धारित करती है कि कोई व्यक्ति केवल नाम का 'श्रेष्ठ' है या वास्तव में अपने विचारों और मूल्यों के प्रति भी दृढ़ है। चरित्र वह दीपक है जो आंधियों में भी टिमटिमाता है। जब चारों ओर अनिश्चितता हो, तब भी जो व्यक्ति सच्चाई, सहनशीलता और नैतिकता से विचलित न हो, वही वास्तव में चरित्रवान कहा जा सकता है। इतिहास इसका साक्षी है कि तमाम महापुरुषों की महानता का उद्भव उनके संघर्षों और कठिनाइयों से जूझते समय ही हुआ। जब सब कुछ त्यागने का विकल्प खुला था, तब भी उन्होंने सत्य, धैर्य एवं करुणा का मार्ग नहीं छोड़ा और इतिहास रचा।

कठिन समय में मनुष्य के समक्ष दुविधा होती है कि परिस्थिति से पलायन करे या साहसपूर्वक उस स्थिति का सामना करते हुए आंतरिक शक्ति पर विश्वास बनाए रखे। यही चुनाव उसके चरित्र की गहराई को परिभाषित करता है। सामान्य परिस्थिति में तो छल, कपट और लोभ जैसे दुर्गुण भी तात्कालिक रूप से सफलता दिला सकते हैं, किंतु जब हालात विपरीत हों, तभी पता चलता है कि कौन सत्य का साधक है और कौन अपने मूल्यों के लिए कष्ट झेल सकता है। जो अपने सिद्धांतों की रक्षा करते हुए संघर्ष करता है, उसका चरित्र ही कालजयी बनता है। कठिनाइयां सहनशीलता की परीक्षा लेती हैं और भीतर छिपे आत्मबल को भी उजागर करती हैं, जो सामान्यतः दृष्टिगोचर नहीं होता। चरित्र की परीक्षा ही व्यक्ति को निखारती है।

कुमार नृपेंद्र

एआइ की भूख और रचनात्मकता की उपेक्षा

देवेंद्रराज सुथार

एआइ से कंटेंट क्रिएशन में चोरी के मामले तेजी से सामने आ रहे हैं जो चिंताजनक है

जेनरेटिव आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के नाम पर क्रिएटर्स की बौद्धिक संपदा का उल्लंघन किया जा रहा है। अमेरिका में चल रहे मुकदमे इसकी पुष्टि करते हैं। चैटजीपीटी, क्लाउड, जेमिनी जैसे एआइ टूल बिना अनुमति के किताबें, लेख, समाचार, कविता और फोटो कंटेंट चुराकर उन्हें थोड़े बदलाव के साथ नए रूप में पेश कर रहे हैं। हाल ही में एक कंपनी के खिलाफ दायर मुकदमे में चौंकाने वाली बात सामने आई। लेखकों ने आरोप लगाया कि इस कंपनी ने सात करोड़ किताबों की चोरी की गई प्रतियों से भरी बुक्स-3 नामक लाइब्रेरी का इस्तेमाल किया। दरअसल ये सभी किताबें बिना अनुमति के डाउनलोड की गई थीं। कंपनी का कहना है कि उन्होंने वैध किताबें खरीदी थीं, जबकि वे चोरी की गई लाइब्रेरी का इस्तेमाल कर रहे थे। जून, 2025 में कोर्ट के फैसले में जज ने उस कंपनी और मेटा दोनों के पक्ष में फैसला सुनाया है। कोर्ट का तर्क है कि यह उचित उपयोग की श्रेणी में आता है, क्योंकि एआइ ट्रांसफार्मेटिव काम कर रहा है। लेकिन यह तर्क कितना सही है। ट्रांसफार्मेटिव काम वह होता है जो मूल कंटेंट को नया अर्थ देता है, न कि उसे चुराकर व्यावसायिक लाभ उठाता है।

भारत में भी कई प्रकाशकों ने ओपनएआइ के खिलाफ मुकदमा दायर किया है। उनका आरोप है कि चैटजीपीटी ने बिना अनुमति के भारतीय समाचार और सामग्री का उपयोग किया है। ओपनएआइ का दावा है कि वे केवल तथ्य प्रस्तुत करते हैं। भले ही तथ्य सार्वजनिक हों, लेकिन उनकी प्रस्तुति, भाषा और संदर्भ निर्माता की बौद्धिक संपदा है। समस्या यह है कि भारत के कापीराइट अधिनियम 1957 में एआइ के लिए स्पष्ट प्रविधान नहीं हैं। इसी कमजोरी का फायदा प्रौद्योगिकी कंपनियां उठा रही हैं। समय का तकाजा है कि हमारे नीति निर्माताओं को इस दिशा में तुरंत कदम उठाने चाहिए।

सच्चाई यह है कि एआइ कंपनियां अरबों डालर का मुनाफा कमा रही हैं, लेकिन जिन रचनाकारों के काम पर यह कारोबार फलफूल रहा है, उन्हें फूटी कौड़ी भी नहीं मिल रही। यह अन्याय ही नहीं, बल्कि क्रिएटर्स की आजीविका पर भी हमला है।

एआइ कंपनियों को क्रिएटर्स से लाइसेंस लेने की जरूरत है। जैसे म्यूजिक कंपनियां कलाकारों को रायल्टी देती हैं, वैसे ही इन कंपनियों को भी करना चाहिए। अगर वे वाकई बदलावकारी काम कर रही हैं, तो उन्हें फीस देने में क्या दिक्कत है? सरकारों को कापीराइट कानून बदलने चाहिए। तकनीक के नाम पर चोरी को जायज नहीं ठहराया जा सकता। अगर क्रिएटर्स की कीमत पर एआइ का विकास किया जा रहा है, तो यह गलत दिशा में जा रहा है। उपभोक्ताओं को भी जागरूक होना चाहिए। जब आप एआइ टूल्स का उपयोग करते हैं तो समझ लें कि इसके पीछे लाखों लेखकों और पत्रकारों की मेहनत है। तकनीकी विकास मानवीय मूल्यों के खिलाफ नहीं होना चाहिए।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

आयोग को मिलें और अधिकार

'चुनाव आयोग की सख्ती' शीर्षक से प्रकाशित संपादकीय में बिहार चुनाव को लेकर विपक्ष की आपत्तियों पर सटीक तथ्य प्रस्तुत किए हैं। बिहार में मतदाता सूची के सत्यापन को लेकर इंटरनेट मीडिया में फैलाए जा रहे भ्रामक वीडियो और पोस्ट न केवल लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर करते हैं, बल्कि चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता पर भी सवाल खड़ा करते हैं। ऐसे में चुनाव आयोग की सतर्कता और जवाबी कार्रवाई सराहनीय अवश्य है, लेकिन इसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। आज जब इंटरनेट मीडिया अफवाहों और फेक न्यूज का सबसे बड़ा माध्यम बन गया है, तब चुनाव आयोग जैसे संवैधानिक संस्थान द्वारा खंडन मात्र से उद्देश्य की पूर्ति संभव नहीं। आयोग के पास उन तत्वों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त कानूनी अधिकार नहीं हैं, जो चुनाव प्रणाली को बदनाम करने में लगे हैं। इस पृष्ठभूमि में आवश्यकता इस बात की है कि चुनाव आयोग को डिजिटल प्लेटफार्म पर फैलाई जा रही फेक न्यूज और भ्रामक प्रचार के खिलाफ त्वरित और दंडात्मक कार्रवाई हेतु विशेष अधिकार दिए जाएं।

मधु, रतलाम (मप्र)

अंधविश्वास की आग में जलता देश

बिहार में पूर्णिया जिले के टेटगामा आदिवासी टोला में एक ही परिवार के पांच लोगों को 'डायन' बताकर जिंदा जलाना कानून और मानवता का घोर अपमान है। यह घटना आधुनिक भारत की उस गहरी खाई को सामने लाती है, जहां विज्ञान और अंधविश्वास एक साथ पल रहे हैं। यह केवल एक आपराधिक कृत्य नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, प्रशासनिक सजगता और शासन-तंत्र की सामूहिक विफलता का उदाहरण है। हम उस भारत के नागरिक हैं जिसकी परंपरा में चार्वाक, गौतम बुद्ध, नागार्जुन और विवेकानंद जैसे चिंतकों ने तर्क, विवेक और वैज्ञानिक सोच को जीवन का आधार माना। किंतु जब हम 21वीं सदी के भारत में 'डायन' जैसी अंधविश्वासजन्य अवधारणाओं पर भीड़ द्वारा की गई हत्याएं होते देखते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी शिक्षा ने केवल डिग्रियां दी हैं, विवेक नहीं। प्रशासन का यह तर्क कि 'हमें जानकारी नहीं मिली'', केवल लापरवाही नहीं, बल्कि संवैधानिक उत्तरदायित्व से सीधा पलायन है। जब सात घंटे तक खुलेआम लोगों को प्रताड़ित कर जलाया गया तो यह राज्य द्वारा न्याय की अस्वीकृति का प्रतीक बनता है। समाज को भी आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता है। बीमारी का समाधान झाड़-फूंक नहीं, चिकित्सा है। अंधविश्वास से संचालित 'डायन प्रथा' न केवल महिला विरोधी है, बल्कि मानवता के विरुद्ध अपराध भी है। इस सोच का उन्मूलन केवल कानून से नहीं, जन-जागरूकता, संवाद और वैज्ञानिक चेतना से ही संभव है। राज्य सरकारों को पंचायत स्तर पर विज्ञान शिक्षा केंद्र, संवाद चौपाल और सामाजिक निगरानी समितियां अनिवार्य रूप से स्थापित की जाएं। विद्यालयों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण आधारित सामाजिक अध्ययन को अनिवार्य किया जाए।

awanishg30@gmail.com

मेलबाक्स

गुरु की महत्ता और योगदान

गुरु पूर्णिमा हिंदू संस्कृति का एक पावन पर्व है, जिसे हर वर्ष आषाढ़ मास की पूर्णिमा तिथि को श्रद्धा और भक्ति के साथ मनाया जाता है। गुरु पूर्णिमा का ऐतिहासिक महत्व है। मान्यता है कि इसी दिन महर्षि वेदव्यास का जन्म हुआ था, जिन्होंने चारों वेदों का संकलन किया। अतः इस दिन को व्यास पूर्णिमा के नाम से भी जाना जाता है। यही कारण है कि इस दिन आध्यात्मिक गुरु, धर्म गुरु और शिक्षकों का सम्मान विशेष रूप से किया जाता है। गुरु को हमारे जीवन में ईश्वर से भी ऊंचा स्थान दिया गया है। आज के संदर्भ में गुरु न केवल धार्मिक या आध्यात्मिक हो सकते हैं, बल्कि वे शिक्षक, माता-पिता, वरिष्ठ या कोई भी व्यक्ति हो सकता है जिसने हमें जीवन का सही मार्ग दिखाया हो। इस दिन हम अपने गुरुजनों के चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित कर आशीर्वाद लेते हैं। यह पर्व हमें अपने जीवन में गुरु की उपस्थिति की महत्ता और उनके योगदान को याद करने का अवसर देता है।

ऋषि सुभाष बुड़ावन वाला, मध्य प्रदेश

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: response@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष: नई दिल्ली कार्यालय: 011-43166300, नोएडा कार्यालय: 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।
****